प्रकाशक—

पन्नालाल बाकलीवाल

महामंत्री—भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था,

९ विश्वकोष लेन, बाघबाजार, कलकत्ता।



मुद्रक—

श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ,

जैनसिद्धांतप्रकाशक पवित्र प्रेस

९ विश्वकोष लेन. पो० बाघबाजार—कलकत्ता।

निवेदन ।

श्रावकके छह आवश्यकोंमें देवपूजा प्रधान है । सांसारिक आकुलतामें फंसे हुये मनुष्योंको वीतराग जिनदेवके गुण स्मरण करनेसे बड़ी ही शांति मिलती है । आत्माके अनंतसुख-गुणकी झलक अनुभवमें झलकने लगती है परंतु जो शब्द हमारे मुखसे निकलें और उनका अर्थ हमारी समझमें न आवे तो उससे यथार्थ लाभ नहिं पहुंचता बल्कि उस क्रियासे अरुचि हो जाती है । यही कारण है कि हम श्रावक होकर भी जिनपूजन प्रतिदिन नहिं करते । केवल दो चार मिनट सामान्य मूर्तिका अवलोकन करलेनेमात्रसे ही अपनेको कृतकृत्य समझ बैठते हैं । बहुतसे भाई अर्थज्ञान न होनेसे अशुद्ध ही उच्चारण करते हैं और बहुतसे काय वचनसे जिनस्तुति करते भी मनसे दूसरी जगह चले जाते हैं । इसप्रकार जैनसमाजका बहु भाग प्रथमावश्यकके वास्तविक फलसे शून्य रहता है । इसलिये संस्कृत नित्य पूजनकी भाषाटीका छपानेकी बहुत बड़ी आवश्यकता समझकर यह ग्रंथ प्रकाशित किया गया है । आशा है हमारे भाई इससे लाभ उठाकर स्वपर कल्याण करेंगे ।

निवेदक—श्रीलाल जैन मंत्री.

कीर्तिध्वनि।

—:o:—

ओरण (गुजरात) निवासी श्रीमान् शेठ मोतीचंद साकलचंदजीकी विधवा पत्नी स्वर्गीय श्रीमती जडावबाईने अपने मरण समय शास्त्रोद्धारके लिये पांचसौ रुपये दान किये थे, उस रकमसे वीरनिर्वाण संवत् २४४७ में ग्रंथत्रयी भाषा टीकासहित प्रकाशित किये गये थे। काल क्रमसे उनकी बिक्रीसे आई हुई न्योछावरसे यह नित्यनियम-पूजा भाषा टीकासहित छपाई जाती है। आशा है कि इसी तरह एकबार दान देकर सैकडों जैनग्रंथोंके उद्धार करनेका पुण्य उठानेवाले अन्य दानी महाशय भी इस संस्थाके दानी सहायक बनकर जिनवाणी माताका जीर्णोद्धार वा प्रचार करावेंगे।

निवेदक—श्रीलाल जैन

मत्री—भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था।



नित्यनियमपूजा ।

(हिंदी अनुवाद सहित)

अनुवादकका मंगलाचरण ।

इंद्रवज्रा ।

ज्ञानप्रभासे तमको भगाया । संसारसे सार पदार्थ पाया ॥
तीर्थेश होके अजितेश नाथ । नाशो हमारा यह कर्मसाथ ॥ १ ॥

ओं जय जय जय । नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु ।

अर्थ—हे जिनेंद्र भगवान् ! आप जयवन्त होओ, जयवन्त होओ, जयवन्त होओ। आपके लिये हमारा नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

विशेष—जयकारको तीनबार उच्चारण करनेसे जिनेंद्रभगवानकी सर्वोत्तमता तथा उनके लिये अपना उच्च आदरभाव प्रगट होता है और नमस्कारको तीनबार कहनेसे अन्तरंग विनयके साथ २ वचन तथा कायकी बहिरंग विनय भी प्रगट होती है। इसके सिवाय यह भी प्रगट होता है कि हमारे वन्दनीय आप ही हैं अन्य कोई नहीं है।

आर्या ।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

अर्थ—मैं अरहंतोंके लिये नमस्कार करता हूं। मैं सिद्धोंके लिये नमस्कार करता हूं। मैं आचार्य परमेष्ठीको नमस्कार करता हूं, मैं उपाध्याय परमेष्ठीकेलिये नमस्कार करता हूं। तथा लोकवर्ती सर्व साधुओंको नमस्कार करता हूं।

विशेष—ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मोंको नष्ट करके वीतराग तथा सर्वज्ञ पद पानेवाले अरहंत परमेष्ठी हैं। इनको ही परम हितोपदेशक भी कहते हैं क्योंकि केवलज्ञानसे लोक, अलोकवर्ती समस्त पदार्थोंको युगपत् जानकर जीवोंको यथार्थ उपदेश अरहंत ही देते हैं। अरहंत परमेष्ठी ही जिस समय बचे हुए चार अघातीकर्मोंको भी नाश कर देते हैं तब वे सिद्ध परमेष्ठी कहलाते हैं और उसी समय वे शरीरसे छूटकर लोकके ऊपरी भागमें विराजमान हो जाते हैं। मुनियोंके संघकी ठीक व्यवस्था रखनेवाले आचार्य होते हैं। वे मुनियोंके आचारसंबंधी सर्व दोषोंको प्रायश्चित्त आदि देकर पृथक् किया करते हैं तथा स्वयं भी पांच आचारोंको पालते हैं। मुनियोंको पढानेवाले, धर्मका उपदेश देनेवाले उपाध्याय परमेष्ठी होते हैं और उपदेश आदि कार्योंको न करते हुए केवल मोक्षमार्गको साधनेवाले साधु परमेष्ठी होते हैं।

शंका—आठकर्मोंको नष्ट करनेवाले सिद्ध परमेष्ठी जब कि चार घातीकर्मोंके नाशक अरहंत परमेष्ठीसे परमविशुद्ध हैं तब मंत्रमें उनका पद दूसरा क्यों रक्खा? उनका नाम अरहंत परमेष्ठीके पहले होना चाहिये। इसीप्रकार उपदेश आदि बाह्य क्रियाओंको जो कि राग आदि विकारों अथवा सूक्ष्म मलिनताको उत्पन्न करनेवाली हैं, छोडकर परम विशुद्धताके कारणभूत आत्मध्यानमें लवलीन रहनेवाले साधु परमेष्ठी

जब कि आचार्य तथा उपाध्याय परमेष्ठीसे भावोंकी विशुद्धतामें अधिक बढे चढे हैं तब उनका पद आचार्य तथा उपाध्यायके पीछे क्यों रक्खा ?

उत्तर—यद्यपि विशुद्धतामें सिद्ध परमेष्ठी अरहंत परमेष्ठीसे तथा साधु परमेष्ठी आचार्य और उपाध्यायसे विशुद्धतामें अधिक हैं तो भी उनके द्वारा सांसारिक जीवोंको कल्याणप्राप्ति वा विशुद्धता नहीं मिलती है। जिसप्रकार अरहंतके उपदेशको पाकर संसारी जीव अजर अमर हो जाते हैं उस प्रकार सिद्धोंके द्वारा वे अपनी आत्मशुद्धि नहीं कर सकते हैं क्योंकि सिद्ध परमेष्ठी न तो इस संसारमें ठहरते ही हैं न शरीरधारी ही होते हैं जिससे कि जीवोंका उपदेशादिसे कुछ कल्याण कर सकें। इस कारण अरहंत परमेष्ठीको पहला स्थान दिया है। इसी प्रकार जिस तरह आचार्य तथा उपाध्याय परमेष्ठी अपने पवित्र उपदेशोंसे तथा वाद विवाद द्वारा जीवोंका कल्याण तथा धर्मरक्षण करते हैं उसप्रकार साधु परमेष्ठी नहीं करते हैं अतः आचार्य तथा उपाध्याय परमेष्ठीको साधु परमेष्ठीसे उच्चपद दिया है।

ओं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः।

अर्थ— मैं अनादिकालीन इस मूल मंत्रको नमस्कार करता हूं।

(यहां पुष्पांजलि क्षेपण करना)

चत्तारि मंगलं—अरहंतमंगलं, सिद्धमंगलं, साहुमंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंतसरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि साहुसरणं पव्वज्जामि; केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

इस संसारमें चार ही मंगल हैं। प्रथम तो अरहंत भगवान हैं दूसरे सिद्धपरमेष्ठी मंगलरूप हैं। तीसरे साधु महाराज मंगलकारक हैं और चौथे केवली भगवानका कहा हुआ धर्म मंगलस्वरूप है।

इस लोकमें चार पदार्थ ही सबसे उत्तम हैं। प्रथम तो अरहंतपरमेष्ठी सर्वोत्तम

---

१ मं=पापं, गालयतीति मंगलं —अर्थात् पापको नाश करनेवाला मंगल होता है। अथवा मंगं=सुखं लातीति मंगलं अर्थात् सुख शांतिको लाने वाला मंगल होता है। सो पापके नाशक तथा सुख—शांतिके करने वाले संसारमें चार पदार्थ ही हैं।

हैं। दूसरे समस्त कर्ममलसे रहित सिद्ध भगवान संसारमें सबसे उत्तम हैं। तीसरे साधु परमेष्ठी हैं। चौथे सर्वज्ञरचित धर्म परम उत्तम है।

सांसारिक दुखसे बचनेके लिये मैं चारकी शरण लेता हूं। सिद्धमहाराजकी शरण लेता हूं, साधुपरमेष्ठीकी शरण लेता हूं तथा केवली भगवानसे उपदिष्ट धर्मकी शरण लेता हूं

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पंचनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यंतरे शुचिः ॥ २ ॥
अपराजितमंत्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥ ३ ॥
एसो पंचणमोयारो सव्वपापपणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ॥ ४ ॥
अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः।

सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥

कर्माष्टकविनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम् ।

सम्यक्त्वादिगुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥ ६ ॥

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनीभूतपन्नगाः ।

विषो निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥ ७ ॥

जीव यदि इस पंच परमेष्ठीके नमस्कार मंत्रका ध्यान करे तो वह सब पापोंसे छूट जाता है । ध्यान करते समय वह चाहे पवित्र हो या अपवित्र हो, चाहे अच्छी जगह हो अथवा बुरी जगह हो ॥ १ ॥

शरीर चाहे तो स्नानादि द्वारा पवित्र हो अथवा किसी अशुचि पदार्थके स्पर्शनसे अपवित्र हो, इसके सिवाय सोती, जागती, उठती, बैठती, चलती आदि कोई भी दशा हो इन सभी दशाओंमें जो पुरुष परमात्माका स्मरण करता है वह उस समय बाह्य और अभ्यन्तरसे (शरीरसे तथा मनसे) पवित्र है ॥ अर्थात् अपनी पवित्रता वास्तविकमें आत्मासे संबन्ध रखती है, सात कुधातुमय शरीर तो सर्वथा अपवित्र है । उसकी पवित्रता किसी भी प्रकार नहीं हो सकती । आत्माकी पवित्रता शुभ परिणामों

से ही होती है और पंचपरमेष्ठीको स्मरण करते समय परिणामोंकी विशुद्धता अवश्य ही होती है इसलिये परम पवित्रताको करनेवाला नमस्कार मन्त्र (णमोकार मंत्र) है ॥ इस श्लोकमें परमात्मा शब्दसे पंच परमेष्ठी लिये हैं क्योंकि उत्कृष्ट आत्मा (परम उत्कृष्ट आत्मा) संसारमें इन्हीं की है ॥ २ ॥ यह णमोकार मंत्र अन्य किसी मंत्रसे प्रतिहत (खंडित रुका हुआ) नहीं हो सक्ता है इसलिये यह मंत्र अपराजित है [किसी से पराजित नहीं है] और सब विघ्नोंको हरनेवाला है तथा सभी मंगलोंमें यह प्रधान मंगल माना गया है ॥ ३ ॥ यह नमस्कार मंत्र सर्व पापकर्मोंको नष्ट करने वाला है और सभी मंगलोंमें मुख्य मंगल है ॥ ४ ॥ अर्हं, ऐसे जो दो अक्षर हैं वे ब्रह्म अर्थात् अरहंतके वाचक (कहनेवाले) हैं, तथा परम इष्ट जो सिद्धचक्र है उसको उत्पन्न करनेके लिये बीजके समान हैं, इसलिये ' अर्हं ' को मैं मन, वचन, कायसे, सर्वदा नमस्कार करता हूं ॥ ५ ॥ आठ कर्मोंसे छूटे हुए, तथा मोक्ष संपत्तिका घर और सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघु, अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्म, वीर्य, इन आठ गुणों सहित सिद्धसमूहको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ६ ॥ जिनेन्द्र भगवानका स्तवन करने से शाकिनी, डाकिनी, भूत, पिशाच, सर्प, सिंह, अग्नि आदि समस्त विघ्न दूर हो जाते हैं। बडे हालाहल विष भी अपना असर त्याग देते हैं ॥ ७ ॥

(यहां पुष्पांजलि चढाना चाहिये)

(यदि अवकाश हो तो यहां पर सहस्रनाम पढकर दश अर्घ देना चाहिये अन्यथा निम्न लिखित श्लोक पढकर एक अर्घ चढाना चाहिये)

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिननाथमहं यजे ॥ ७ ॥

मैं निर्मल अथवा उच्च मंगलगान (मंगलीक जिनेन्द्रस्तवन पूजनादि) के शब्दोंसे गुंजायमान इस जिनमंदिरमें जिनेन्द्र देवका जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल तथा अर्घके द्वारा पूजन करता हूं।

ओं ह्रीं श्रीभगवज्जिनसहस्रनामभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

अनंत चतुष्टय तथा समवसरण, आठ प्रतिहार्य आदि लक्ष्मीसे सहित जिनेन्द्रभगवानके एक हजार आठ नामोंके लिये मैं अर्घ चढाता हूं।

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं, स्याद्वादनायकमनंतचतुष्टयार्हम् ।
श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतुर्जैनेंद्रयज्ञविधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥ ८ ॥

स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुंगवाय, स्वस्ति स्वभावमहिमोदयसुस्थिताय
स्वस्ति प्रकाशसहजोर्जितदृङ्मयाय, स्वस्ति प्रसन्नललिताद्भुतवैभवाय
स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय, स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय
स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय, स्वस्ति त्रिकालसकलायतविस्तृताय
द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं, भावस्य शुद्धिमधिकामधिगंतुकामः।
आलंबनानि विविधान्यवलंब्य वल्गन्, भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञम्
अर्हन्पुराणपुरुषोत्तम पावनानि वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ, पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥

मैं तीनलोकके स्वामी, स्याद्वाद विद्याके नायक—पदार्थोंके अनेकान्तको प्रकट करनेमें अग्रेसर, अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्यके धारक तथा अनंत चतुष्टयादि अंतरंग एवं प्रातिहार्य समवशरणादि बहिरंग लक्ष्मीसे युक्त, जिनेन्द्रभगवानको नमस्कार करके जिनेश देवकी पूजनकी विधिको कहता हूं जोकि (पूजन, मूलसंघ (कुन्द-कुन्दस्वामीकी परम्परा अथवा जैनसंघ)के सम्यग्दृष्टी पुरुषोंके लिये पुण्यबंधका प्रधान

कारण है ॥ ८ ॥ तीन लोकके गुरु (प्रधान, गौरवशाली) तथा जिनप्रधान (कषायोंको जीतनेवाले मुनीश्वरोंके स्वामी) के लिये कल्याण होवे। स्वाभाविकमहिमा (अनंतज्ञानादि) के उदयमें भले प्रकार ठहरे हुए भगवानके लिये मंगल होवे। स्वाभाविक प्रकाशसे (केवलज्ञानसे) बढे हुए, केवल दर्शनसे सहित जिनेन्द्रके लिये क्षेम होवे। उज्ज्वल, सुंदर, तथा अद्भुत समवशरणादि वैभवके धारक जिनेशके लिये कुशल होवे॥

विशेष—नमस्कार तीन प्रकार होता है। एक स्तवनात्मक जैसे वीनती स्तुति आदि रीतिसे नमस्कार। दूसरा आशीर्वादात्मक जैसे तुम्हारी जय होय, आपकी वृद्धि होय आदि। तीसरा स्वरूपकथनात्मक जैसे तत्त्वार्थसूत्र परीक्षामुखका मंगलाचरण। इन तीनोंमेंसे यहां मध्यका आशीर्वादात्मक नमस्कार है॥ ९॥

उछलते हुये निर्मल केवलज्ञानरूपी अमृतके प्रवाहवाले एवं स्वभाव और परभावके प्रकाशक और तीन लोकको जाननेवाले केवलज्ञानके स्वामी तथा त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थोंमें ज्ञानके द्वारा फैले हुए जिनेन्द्र भगवानके लिये मंगल होवे १०

अपने भावोंकी परमशुद्धताको पानेका अथवा जाननेका अभिलाषी मैं देश कालके अनुकूल जलचन्दनादि द्रव्योंकी शुद्धताको पाकर अथवा जानकर जिनस्तवन, जिनबिम्बदर्शन, ध्यान, आदि अनेक अवलंबनोंका आश्रय लेकर पूज्यपुरुष अरहंतादिका

पूजन करता हूं ॥ हे अर्हन् ! हे पुरातन प्राचीनपुरुष ! हे उत्तमपुरुष ! यह असहाय दीन एक मनुष्य [पूजा करनेवाला] मैं इन पवित्र समस्त जलादि द्रव्योंको, दैदीप्यमान, निर्मलकेवल ज्ञानरूपी इस अग्निमें सम्पूर्ण पुण्यरूप जैसे बन सके तैसे एकाग्रचित्त होकर हवन करता हूं । भावार्थ—घृत, कपूर, धूप आदि द्रव्योंसे अग्निकुण्डमें हवन किया जाता है उसीके अनुसार यहां केवलज्ञानको अग्निकुंड कल्पित करके हमने जलादि द्रव्य द्वारा हवनरूपसे अरहंतके पूजनकी प्रतिज्ञा बतलाई है ॥ १२ ॥

ओं ह्रीं विधियज्ञप्रतिज्ञानाय जिनप्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

इस प्रकार पुजारी अरहंत प्रतिमाके संमुख विधिपूर्वक पूजनकी प्रतिज्ञाके निमित्त पुष्पोंकी अंजलि क्षेपण करै ।

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः । श्रीसंभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्री-अभिनन्दनः । श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः । श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः । श्रीपुष्पदंतः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः । श्रीश्रेयान्स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः । श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्री-अनंतः । श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशांतिः । श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति

श्रीअरनाथः । श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः । श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः । श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः ॥

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अनंतचतुष्टयादि अंतरंग तथा आठ प्रातिहार्य और ३४ अतिशय, समवशरणादि बाह्य लक्ष्मीसे युक्त श्रीऋषभनाथजी प्रथम तीर्थंकर हमारे कल्याणकेलिये होओ। इसी रीतिसे प्रत्येक तीर्थंकरके लिये नमस्कार है।

स्वस्ति शब्दके कल्याण, क्षेम, मंगल कुशल आदि अनेक शुभ अर्थ हैं। प्रत्येक नमस्कारके अंतमें पुष्पांजलि क्षेपण करनी चाहिये।

अब मुनीश्वरोंका स्तवन किया जाता है।

नित्याप्रकम्पाद्भुतकेवलौघाः स्फुरन्मनःपर्ययशुद्धबोधाः ।
दिव्यावधिज्ञानबलप्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ १ ॥

भावः—अब ऋद्धिधारी महाऋषीश्वरोंको नमस्कार करते हैं—कोई मुनीश्वर अविनाशी, अचल, अद्भुत केवलज्ञानके धारक हैं। किन्हीं ऋषीश्वरोंके दैदीप्यमान मनःपर्ययज्ञान

है तथा कोई ऋषीश्वर दिव्य अवधिज्ञानके बलसे प्रबुद्ध [जागृत] हैं ऐसे महांऋषि हमारे लिये कल्याण करें।

विशेष—ऋद्धिका अर्थ शक्ति है। ये शक्तियां आत्मामें अनन्त हैं। उनमेंसे मुनीश्वरोंमें तपके बलसे कर्मोंका क्षयोपशम होनेके कारण ये ऋद्धियां प्रगट होती हैं। उनमेंसे बुद्धिसंबंधी ऋद्धियां अठारह प्रकारकी हैं जिनमेंसे इस श्लोकमें तीन ऋद्धियोंको बतलाया है ॥ १ ॥

कोष्ठस्थधान्योपममेकबीजं संभिन्नसंश्रोतृपदानुसारि ।
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ २ ॥

कोष्ठस्थधान्योपम, एकबीज, संभिन्नसंश्रोतृत्व, पदानुसारित्व इन चार प्रकारकी बुद्धिऋद्धिको धारण करनेवाले ऋषिराज हमारे लिये मंगल करें ॥ २ ॥

विशेष—जिसप्रकार भंडारमें हीरा, पन्ना, पुखराज, चांदी, सोना, धान्य आदि अनेक पदार्थ जहां जैसे रख दिए जावें पश्चात् बहुत समय बीत जानेपर यदि वे निकाले जांय तो जैसेके तैसे [न तो कम, न अधिक] भिन्न २ उसी स्थानपर रक्खे हुए मिलते हैं। तैसे ही सिद्धांत, न्याय व्याकरणादिके सूत्र, गद्य, पद्य ग्रन्थ जिस प्रकार पढ़े थे

सुने थे, पढाये अथवा मनन किये थे, बहुत समय बीत जानेपर भी यदि पूछा जावे तो न तो एक भी अक्षर घटकर न बढकर तथा न पलटकर भिन्न २ ग्रंथोंको सुना दें। ऐसी शक्तिका नाम कोष्ठस्थधान्योपम ऋद्धि है। ग्रंथोंके एक बीज [मूल] पदके द्वारा उसके अनेक प्रकारके अनेक अर्थोंको जान लेना बुद्धीन ऋद्धि है। बारह योजन लंबे, नौ योजन चौडे क्षेत्रमें ठहरनेवाली चक्रवर्तीकी सेनाके हाथी, ऊंट, घोडे, बैल, पक्षी, मनुष्य आदि सभीके अक्षर तथा अनक्षररूप नानाप्रकारके शब्दों को एक साथ अलग २ सुननेकी शक्तिको संभिन्नश्रोतृत्व ऋद्धि कहते हैं। ग्रंथकी आदिके अथवा मध्यके या अंतके केवल पदको सुनकर सम्पूर्ण ग्रंथको कह देनेकी शक्तिको पदानुसारित्व ऋद्धि कहते हैं॥२॥

संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादनघ्राणविलोकनानि।
दिव्यान्मतिज्ञानबलाद्वहन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥ ३॥

यद्यपि मनुष्योंमें स्पर्शन, रसना, घ्राण इन तीन इंद्रियोंका उत्कृष्ट विषय नौ योजन है। अर्थात् मनुष्य यदि दूरसे स्पर्श करना चाहें तो अधिकसे अधिक नौ योजन दूरीके पदार्थोंका स्पर्श जान सकते हैं। इसीप्रकार अधिकसे अधिक दूरस्थित पदार्थके रस तथा गंधको जानने की शक्ति होय तो नौ योजन दूरवाले पदार्थका रस तथा गंध जान सकते हैं। अधिक नहीं। इसी प्रकार यदि अधिकसे अधिक दूरवाले पदार्थको यदि देखने

की शक्ति होवे तो सैंतालिस हजार दोसौ त्रेसठ ४७२६३ योजन दूरस्थित पदार्थको देख सक्ते हैं और यदि अधिकसे अधिक दूरवर्ती शब्दको सुन सके तो बारह योजनके दूरवर्ती शब्दको सुन सक्ते हैं इससे अधिक नहीं। किन्तु दिव्य मतिज्ञानके बलसे मुनिराज सैकड़ों योजन दूरवर्ती पदार्थोंके स्पर्शन, रस तथा रूपको प्रत्यक्ष जान लेते हैं तथा शब्दको सुन लेते हैं। नेत्रके उत्कृष्ट विषयसे बहुत अधिक दूरवर्ती पदार्थोंको देख लेते हैं ऐसे १ दूरसंस्पर्शन, २ दूर संश्रवण ३ दूर आस्वादन, ४ दूर आघ्राण तथा ५ दूर विलोकन ऋद्धि धारी मुनि हमारे लिये क्षेम करें ॥ ३ ॥

प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः।
प्रवादिनोऽष्टांगनिमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ४ ॥

प्रज्ञाश्रमणत्व प्रत्येकबुद्धता दशपूर्वित्व चतुर्दशपूर्वित्व प्रवादित्व और अष्टांगमहानिमित्तज्ञता ऋद्धियोंको धारण करनेवाले मुनिवर हमारी कुशलता करें ॥ विशेष—पदार्थोंके अत्यंत सूक्ष्म तत्त्वोंको जिनको कि केवल श्रुतकेवली ही बतला सक्ते हैं। द्वादशांग चौदह पूर्व बिना पढे ही प्रज्ञा ऋद्धिके प्रभावसे निःसंशय बतला देना प्रज्ञाश्रमणत्व ऋद्धि है ॥ अन्य किसीके उपदेशके बिना ही केवल अपनी शक्तिसेही ज्ञान सं-

यपका विधान निरूपण करना प्रत्येकबुद्धता ऋद्धि है ॥ अपने २ नाना स्वरूप तथा अनेक सामर्थ्य प्रकट करनेवाली महावेगवाली महारोहिणी आदि आई हुई अनेक विद्याओंके द्वारा भी चारित्रसे चलायमान न होना अर्थात् दश पूर्वरूपी दुस्तर समुद्रको पार कर जाना दशपूर्वित्व ऋद्धि है ॥ संपूर्ण श्रुतज्ञानका प्राप्त हो जाना चतुर्दशपूर्वित्व ऋद्धि है ॥ अन्य क्षुद्रवादियोंकी तो क्या ? यदि आकर इन्द्र भी शास्त्रार्थ करे तो उसको भी निरुत्तर कर दें यह प्रवादित्व ऋद्धि है । १ अंतरीक्ष २ भौम ३ अंग ४ स्वर ५ व्यंजन ६ लक्षण ७ छिन्न ८ स्वप्न इन आठ महा निमित्तोंके जाननेको अष्टांग निमित्तज्ञता ऋद्धि कहते हैं ॥ सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादिके उदय, अस्तादि द्वारा भूत, भविष्यत् वर्तमान काल संबंधी होनेवाले हानि लाभको जानना अंतरीक्ष निमित्तज्ञता है। पृथ्वी की कठिनता, चिक्कणता, छिद्र आदिको देखनेसे ही होनेवाले हानि, लाभ, जय, पराजय तथा गड़े हुये सोने चांदी आदि वस्तुओंको जान लेना भौम निमित्तज्ञता है। शरीर के अंग, प्रत्यंगादिको देखकर त्रिकाल संबंधी शुभ, अशुभ ज्ञान लेना अंगनिमित्तज्ञता है। अक्षरात्मक तथा अनक्षरात्मक, शब्दको सुन लेनेसे ही होनेवाले हानि लाभको जान लेना स्वरनिमित्तज्ञता है। शिर, मुख, कंठादि स्थानोंमें तिल, मसे आदिको देख

लेनेसे त्रिकालवर्ती हित, अहितको जान लेना व्यंजननिमित्तज्ञता है। श्रीवृक्ष, ध्वजा, कलश, साथिया आदि चिन्होंको शरीरमें देख लेनेसे त्रिकालसंबंधी इष्ट, अनिष्टादि को जान लेना लक्षणनिमित्तज्ञता है। वस्त्र, शस्त्र, छत्र, जूता, आसन आदि पदार्थोंके शस्त्र, कांटे, चूहे आदिके द्वारा कटे हुए अंशको देखकर होनेवाले सुख, दुःख, हानि, लाभ आदिको जान लेना छिन्ननिमित्तज्ञता है। वात पित्त कफके आधिक्यसे रहित पुरुषके रात्रिके पिछले भागमें देखे स्वप्न द्वारा सूर्य, चन्द्र, समुद्र गधा ऊंट आदिको देखकर आगामी जीवन, मरण, सुख दुःखादिको मालूम कर लेना स्वप्न निमित्तज्ञता है॥ इन आठो महा-निमित्तोंको जानना अष्ट महानिमित्तज्ञना ऋद्धि है॥ इस प्रकार बुद्धि ऋद्धिके १८ भेद चार श्लोकोंमें बतला दिये हैं। अब यतीश्वरोंकी क्रिया ऋद्धिको बतलाते हैं।

जङ्घावलिश्रेणिफलाम्बुतन्तुप्रसूनबीजाङ्कुरचारणाह्वाः।
नभोऽङ्गणस्वैरविहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥ ५॥

जंघा, श्रेणी, फल, जल, तन्तु, पुष्प, बीज, अंकुर, अग्निशिखा पर चलनेवाले चारण ऋद्धिके धारक ऋषिवर तथा आकाशगामिनी ऋद्धिके बलसे आकाशरूपी आंगनमें विहार करनेवाले मुनिवर हमको आनन्द प्रदान करें॥ ५॥

विशेष–पृथ्वीसे चार अंगुल ऊंचे आकाशमें जंघाको शीघ्र उठाने रखनेसे सैकड़ों योजन गमन करनेकी शक्तिको जंघाचारण ऋद्धि कहते हैं। आकाश श्रेणीमें वृक्षोंके फल, फूल, अंकुर, बीज आदि पर तथा जल पर एवं अग्निकी शिखा पर गमन करें किन्तु फूल, अंकुर आदि न टूटें और न उनके सूक्ष्म जीवोंका ही घात हो ऐसी जल–चारण, अग्निचारण, फूलचारणादि ऋद्धियां हैं। पद्मासन, खड्गासन आदि आसनोंमें ठहरे हुये पैरोंको बिना उठाये, रक्खे ही आकाशमें विहार करना आकाशगामित्व ऋद्धि है। इसप्रकार मुनीश्वरोंकी दो प्रकारकी (चारण, आकाशगामित्व) क्रिया ऋद्धियोंको बतलाया है ॥ ५ ॥

अणिम्नि दक्षाः कुशला महिम्नि लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि।
मनोवपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ६ ॥

अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा ऋद्धिमें पूर्णतया कुशल तथा मनोबल वचनबल और कायबल ऋद्धिके धारक योगीश्वर हमारे लिये मंगल करें ॥ ६ ॥

विशेष–विक्रिया ऋद्धि वैसे तो अनेक प्रकार है किन्तु उसके प्रधान चार ही भेद हैं। उनमेंसे परमाणुके समान अपने शरीरको छोटा बनाकर कमलनालीके सूक्ष्म छिद्र

में भी घुसकर वहां बैठने आदिके योग्य शरीरको सूक्ष्म कर लेना अणिमा ऋद्धि है। सुमेरु पर्वतसे भी बड़ा शरीर बना लेना महिमा ऋद्धि है। वायुसे भी हलकी अपनी देहको कर लेना लघिमा ऋद्धि है। वज्रसे भी भारी अपने शरीरको कर लेना गरिमा ऋद्धि है। बल ऋद्धि तीन प्रकार है। १ अंतर्मुहूर्तमें ही समस्त द्वादशांगके पदार्थोंको विचार लेना मनोबल ऋद्धि है। २ संपूर्ण श्रुतज्ञानका अंतर्मुहूर्तमें ही पाठ कर जाना फिर भी जिह्वा कंठ आदिमें कुछ भी शुष्कता तथा थकावट न होना और न पसीनेका आना वचन बल ऋद्धि है। ३ छह मास, एक वर्ष, आदि बहुत समय तक उपवास करने पर भी शरीरका बल, कांति आदि थोड़ा भी कम न होना, शरीरमें किसी प्रकार भी खेद न होना काय बल ऋद्धि है ॥ ६ ॥

विक्रिया ऋद्धिके चार प्रकार ऊपर बतला दिये हैं उनके सिवा सात भेदोंको अब और बतलाते हैं—

सकामरूपित्ववशित्वमैश्यं प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ७ ॥

सकामरूपित्व, वशित्व, ईशित्व, प्राकाम्य, अन्तर्धान, आप्ति और अप्रतिघात ऋद्धियोंमें प्रधानता रखनेवाले ऋषि पुंगव हमारे लिये क्षेम करें ॥ ७ ॥

विशेष— एकसाथ अनेक आकारवाले अनेक शरीरोंको बना लेनेकी शक्ति सकामरूपित्व ऋद्धि है। सभी जीवोंको अपने वशमें कर लेना वशित्व ऋद्धिका कार्य है। तीन लोककी प्रभुता (ऐश्वर्य) करनेकी शक्ति ईशित्वऋद्धि है। जलमें पृथ्वीके समान चलना तथा पृथ्वी पर जलके समान निमज्जन (डूबना) उन्मज्जन (डूबनेके पश्चात् ऊपर आनेके लिये उछलना) करनेकी सामर्थ्यको प्राकाम्य ऋद्धि कहते हैं। तुरंत ही अदृश्य (नहीं दिखाई देना) होनेकी शक्तिको अंतर्धान ऋद्धि कहते हैं। भूमिपर बैठे हुए ही अंगुलीसे सुमेरु पर्वतकी चोटी, सूर्य, चन्द्रादिको छू लेना आप्ति ऋद्धि है। पर्वतोंके बीचसे किसी गुफा आदिके बिना ही खुले मैदानके समान जाना आना और किसी प्रकार भी रुकावट न आना अप्रतिघात ऋद्धिकी महिमा है ॥७॥

तपकी अतिशय रूप सात ऋद्धियां हैं। उनका अब वर्णन करते हैं।

दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं घोरं तपोघोरपराक्रमस्थाः।
ब्रह्मापरं घोरगुणाश्चरन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ८ ॥

१ दीप्त, २ तप्त, ३ महोग्र, ४ महाघोर, ५ तपोघोर, ६ पराक्रमघोर और ७ ब्रह्मचर्य ऋद्धिधारी मुनिराज हमको मंगल प्रदान करें।

विशेष--बडे २ उपवास करते हुए भी, मनोबल, वचनबल तथा कायबलका बढना शरीरमें सुगंधिका आना, कमलकी सुगंधिवाली वायुके समान निःश्वासका निकलना तथा शरीरमें म्लानता न होकर महाकांतिका होना दीप्त ऋद्धि है। तपी हुई लोहेकी कड़ाहीमें जलके समान किये हुए भोजनका तुरंत सूख जाना अर्थात् उस भोजनसे मल, मूत्र, रक्त, मांस आदिका न बनना तप्त ऋद्धि है। एक उपवास, दो, चार, छह, दश, पक्ष, मास आदिके उपवासोंमेंसे किसी एकको धारण करके मरणपर्यंत उसको न छोडना महोग्र तप ऋद्धि है। सिंहनिःक्रीडत आदि महाउपवासोंको करते रहना महाघोर नामक तप ऋद्धि है। वात, पित्त, कफ, संनिपातसे उत्पन्न ज्वर, कास, श्वास शूल आदि रोगोंसे पीडित होने पर भी उपवास, कायक्लेश आदिसे नहीं हटनेवाले तथा दुष्ट यक्ष, राक्षस, पिशाचके निवास स्थान, सिंह, हाथी, गीदड, भेडिया, सर्प, आदिके शब्दोंसे व्याप्त भयानक, पर्वत, गुफा, श्मशान, सूने गांव आदिमें निवास करनेवाले मुनीश्वर तपोघोर ऋद्धिके धारक होते हैं। तथा अत्यन्त पीडाकारक रोग सहित होते हुए भी भयानक स्थानोंमें उपवासको बढाते ही जांय ऐसे परम ऋषि पराक्रमघोर नामक ऋद्धिधारी होते हैं॥ चिरकालके तपश्चरण करनेके कारण स्वप्नमें भी

ब्रह्मचर्यसे नहीं डिगना, अतिविकारकारी परिस्थिति मिलने पर भी ब्रह्मचर्यमें दृढ बने रहना ब्रह्मचर्य नामक ऋद्धि है ॥ ८ ॥

आमर्षसर्वौषधयस्तथाशीर्विषंविषा दृष्टिविषंविषाश्च ।
सखिल्लविड्जल्लमलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ३ ॥

१ आमर्षौषधि २ सर्वौषधि ३ आशीर्विषंविष ४ दृष्टिविषंविष ५ क्ष्वेलौषधि ६ विडौषधि ७ जल्लौषधि ८ मलौषधि ऋद्धिधारी परमऋषि हमारा कल्याण करें ॥ ६ ॥

विशेष—जिनके हाथ, पैर आदिको छूनेसे ही सब रोग दूर हो जांय वे मुनिवर आमर्षौषधि ऋद्धिधारी हैं। जिनके शरीरका अंग प्रत्यंग तथा नख, केश आदिका छूना ही अथवा उन समस्त अवयवोंसे स्पर्श करनेवाली वायु ही समस्त रोगोंको दूर कर देती है, उन मुनीश्वरोंके सर्वौषधि ऋद्धि होती है। महाविषभरी भोजन भी जिनके मुखमें जाते ही अमृतसमान हो जाय तथा जिनके आशीर्वाद (शब्द सुनने) से ही महाविषव्याप्त पुरुष भी नीरोग हो जाय वे मुनीश्वर आशीर्विष या आशीर्विषंविष ऋद्धिके धारक हैं। जिनके देखनेसे ही विषग्रस्त पुरुष भी स्वस्थ हो जाते हैं उन ऋषिवरोंके दृष्टिविष या दृष्टिविषंविष ऋद्धि होती है। जिनके निष्ठीवन (थूक) कफ आदि

से लगी हुई हवाके स्पर्शसे ही रोग दूर हो जांय उनके क्ष्वेल ऋद्धि होती है। जिनके मल (विष्ठा) की वायु ही रोगनाशक होती है वे मुनीश्वर विडौषधि ऋद्धिधारी होते हैं। जिनके शरीरका मैल (पसीनेमें लगी हुई धूलि) महारोगोंको दूर कर दे उनके जल्लौषधि समझनी चाहिये। जिनके दांत, कान, नाक, नेत्र आदिका मैल सर्वरोगों को नष्ट कर दे उन ऋषीश्वरोंके मलौषधि होती है॥ इस प्रकार औषधि ऋद्धिके आठ भेद हैं॥ ९॥

क्षीरं स्रवन्तोऽत्र घृतं स्रवन्तो मधु स्रवन्तोऽप्यमृतं स्रवन्तः।
अक्षीणसंवासमहानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥ १०॥

क्षीरस्रावी, घृतस्रावी, मधुस्रावी, अमृतस्रावी, तथा अक्षीणसंवास और अक्षीण-महानस ऋद्धिधारी मुनिश्वर हमको मंगल प्रदान करें॥ १०॥

विशेष—नीरस भोजन भी जिनके पाणिपात्र (हाथों) में आते ही दूधके समान गुणकारी हो जाय अथवा जिनके वचन सुननेसे क्षीण पुरुष भी दूधके समान बलको प्राप्त करें उन मुनीश्वरोंके क्षीरस्राविणी ऋद्धि होती है। जिनके पाणि-पुटमें आते ही रूखा भोजन भी घीके समान बलवर्द्धक हो जाय अथवा जिनके वचन

घृतके समान तृप्त करें वे यतीश्वर घृतस्राविणी ऋद्धिके धारक हैं। जिनके हाथोंमें आया हुआ नीरस भोजन भी मधुर हो जाय अथवा जिनके वचन सुनते ही दुःखित, पीड़ित पुरुष भी साता लाभ करें वे योगीश्वर मधुस्राविणी ऋद्धिके धारक होते हैं। जिनके लिये दिया गया सामान्य आहार भी अमृतके समान पुष्टिकारी होय अथवा जिनके वचन अमृतके समान आरोग्यकारी होंय उन ऋषीश्वरोंके अमृतस्राविणी ऋद्धि होती है। इस प्रकार रसऋद्धि चार प्रकारकी है। अक्षीण ऋद्धिके दो भेद हैं एक संवास दूसरी महानस।

जिन मुनिवरोंके अक्षीण संवास नामक ऋद्धि होती है उनके निवासस्थानमें समस्त देव, मनुष्य आदि विना किसी पारस्परिक बाधाके ठहर सक्ते हैं। एवं जिन ऋषीश्वरोंके अक्षीणमहानस ऋद्धि होती है उन मुनीश्वरोंको जिस भोजनपात्रसे भोजन दिया जाता है उस दिन वह पात्र खाली नहीं होता है। अर्थात् उस दिन यदि चक्रवर्तीका समस्त कटक भी भोजन करे तब भी वह पात्र खाली न होगा—भरा ही रहेगा ॥ १० ॥

इसप्रकार अक्षीण ऋद्धिके दो भेद हैं ये ऋद्धियां यतीश्वरोंको तपके प्रभावसे प्राप्त होती हैं

इति स्वस्ति मंगल विधानं।

इस प्रकार स्वस्तिमंगलका विधान समाप्त हुआ।

अथ देवशास्त्रगुरुपूजा ।

सार्वः सर्वज्ञनाथः सकलतनुभृतां पापसंतापहर्ता
त्रैलोक्याक्रान्तकीर्तिः क्षतमदनरिपुर्घातिकर्मप्रणाशः ।
श्रीमान्निर्वाणसम्पद्वरयुवतिकरालीढकण्ठः सुकंठै-
र्देवेन्द्रैर्वंद्यपादो जयति जिनपतिः प्राप्तकल्याणपूजः ॥

जो जिनेंद्रदेव सबजीवोंकेलिये कल्याणरूप हैं । त्रिलोकवर्ती समस्तपदार्थोंको जानने वाले तथा समस्तप्राणियोंके पापरूपी संतापके नाशक हैं। जिनका निर्मल यश तीन लोकमें फैला हुआ है, जिनने कामदेवको नष्ट कर दिया है एवं जिनने चार घातिया-कर्मोंका नाश कर दिया है और जो अविनश्वर अनुपम विभूतिसे सहित हैं, मुक्तिरूपी सुन्दरीने अपनी बाहुओंसे जिनके कंठका आलिंगन किया है तथा जिनके चरण कमल सुन्दरकंठवाले इंद्रोंने पूजे हैं और जो जन्म दीक्षा आदि कल्याणकोंमें देवोंद्वारा पूजित हैं वे भगवान सर्वदा जयवंत हैं ॥ १ ॥

जय जय जय श्रीसत्कान्तिप्रभो ! जगतांपते !
जय जय भवानेव स्वामी भवाम्भसि मज्जताम् ।
जय जय महामोहध्वांतप्रभातकृतेऽर्चनम्
जय जय जिनेश ! त्वं नाथ ! प्रसीद करोम्यहम् ॥ २ ॥

असाधारण लक्ष्मी तथा कांतिके धारक हे जिनेश्वर ! भो संसारके स्वामी ! आपकी जय होय, जय होय, क्योंकि संसारसागरमें डूबने वाले जीवोंके आप ही रक्षक हैं इसलिये आप जयशाली होवें, जयशाली होवें। हे भगवान ! आप जयशील होओ जयशील होओ। मैं अपना मोहरूपी गाढ अंधकार हटाकर (ज्ञानसूर्यके द्वारा) प्रातःकाल करनेके लिये आपकी पूजा करता हूं। हे जिनेश ! मुझपर प्रसन्न होवो ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रीभगवज्जिनेंद्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वानं)

हे जिनेंद्र भगवान ! यहां (वेदीपर) आइये !! आइये !!!

[इस प्रकार आह्वान-अर्थात् जिनेंद्रदेवको बुलानेकी प्रार्थना है]

ओं ह्रीं श्रीभगवज्जिनेंद्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

हे जिनेंद्र भगवान ! यहां तिष्ठिये !! तिष्ठिये !!! (ठहरिये)

(इस प्रकार उनकी स्थापना करना है)

ओं ह्रीं श्रीभगवज्जिनेंद्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्

(इति सन्निधीकरणम्)

हे जिनेंद्र भगवान् ! यहां मेरे समीप हूजिये !! हूजिये !!!

(इस प्रकार जिनवरदेवको अपने समीप बुलानेका मंत्र है)

देवि ! श्रीश्रुतदेवते ! भगवति ! त्वत्पादपंकेरुह-
द्वन्द्वे यामि शिलीमुखत्वमपरं भक्त्या मया प्रार्थ्यते ।
मातश्चेतासि तिष्ठ मे जिनमुखोद्भूते सदा त्राहि मां
दृग्दानेन मयि प्रसीद भवतीं संपूजयामोऽधुना ॥ ३ ॥

हे देवि ! हे श्रुतदेवते ! [श्रुतज्ञान या शास्त्ररूपिणी सरस्वती] भो भगवति ! आपके युगल [दो] चरणकमलोंका मैं भ्रमर (भौंरा) हूं भक्तिपूर्वक मैं यह प्रार्थना

करता हूं कि—जिनेंद्रमुखकमलसे उत्पन्न होनेवाली हे माता! मेरे चित्तमें आप सदा निवास करो तथा सम्यग्दर्शन देकर मेरी रक्षा करो एवं मुझपर प्रसन्न होवें। मैं अब आपका पूजन करता हूं ॥ २ ॥

ओं ह्रीं जिनेंद्रमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान! अत्र अवतरावतर संवौषट्

जिनेंद्रदेवके मुखकमलसे उत्पन्न हे द्वादशांगरूप श्रुतज्ञान! यहां आइये !! आइये !!!

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतद्वादशाङ्ग श्रुतज्ञान! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः

जिनेन्द्रदेवके मुख कमलसे उत्पन्न हे द्वादशांग श्रुतज्ञान! यहां ठहरिये !! ठहरिये !!!

ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशाङ्ग श्रुतज्ञान! अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट्।

जिनेन्द्रदेवके मुखकमलसे उत्पन्न हे द्वादशांगरूप श्रुतज्ञान! यहां मेरे समीप हूजिये !! हूजिये !!!

विशेष——आचारांग १, सूत्रकृतांग २, स्थानांग ३, समवायांग ४, व्याख्याप्रज्ञप्ति ५, ज्ञातृकथांग ६, उपासकाध्ययनांग ७, अंतःकृतदशांग ८, अनुत्तरोत्पाददशांग ९, प्रश्नव्याकरणांग १०, विपाकसूत्रांग ११ तथा पूर्व १२ ये श्रुतज्ञानके बारह अंग हैं अर्थात्

ये बारह अंग ही पूर्णश्रुतज्ञान है। अंतका पूर्वनामक जो अंग है उसके चौदह भेद हैं। इसलिये श्रुतज्ञानको ग्यारह अंग चौदह पूर्व स्वरूप भी कहते हैं।

संपूजयामि पूज्यस्य पादपद्मयुगं गुरोः।
तपःप्राप्तप्रतिष्ठस्य गरिष्ठस्य महात्मनः॥ ४॥

भाषा—जो महापुरुष पवित्र चारित्रका धारक होनेसे समस्त जीवोंका पूज्य है तथा जिसने अपने निर्दोष घोर तपश्चरणसे संसारमें प्रतिष्ठा पाई है, एवं निःसंगता, समता, अखंड ब्रह्मचर्यादि असाधारण गुणोंके कारण जो समस्त जीवोंमें गुरु (गौरवशाली) है। ऐसे परम पावन गुरुके चरण कमल युगलका मैं भले प्रकार पूजन करता हूं॥ ४॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह! अत्र अवतरावतर संवौषट्।

हे आचार्य, उपाध्याय सर्वसाधुके समूह यहां आइये! आइये!!

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

हे आचार्य उपाध्याय सर्वसाधुके समूह! यहां तिष्ठिये! तिष्ठिये!!

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्

हे आचार्य उपाध्याय सर्वसाधुसमूह ! यहां मेरे समीप हूजिये !! हूजिये !!!

देवेन्द्रनागेन्द्रनरेन्द्रवन्द्यान् शुंभत्पदान् शोभितसारवर्णान् ।

दुग्धाब्धिसंस्पर्धिगुणैर्जलौघैर्जिनेंद्रसिद्धान्तयतीन् हजेऽहम् ॥ १ ॥

अर्थ—देवेन्द्र, धरणेन्द्र तथा नरेन्द्रों (चक्रवर्तियों) द्वारा वन्दनीय तथा शोभनीय पदवीको धारण करनेवाले (अर्थात् संसारी जीवोंको कल्याण मार्गके असाधारणरूपसे उपदेशक होने के कारण और समस्तदोषोंसे रहित होनेके कारण जिनेंद्रभगवान, साक्षात् उपदेशकके अभावमें मोक्षमार्गका उपदेश देनेसे तथा अखंडनीय सत्यसिद्धांतमयी होनेसे शास्त्र एवं परम पवित्र चारित्रका प्रचार करनेसे और पूज्य गुणोंके धारण करनेसे गुरु शोभित पदके धारक हैं) एवं शोभित उत्तम वर्णवाले (अर्थात्—करोड़ों सूर्य, चन्द्रोंसे भी बढकर संसारमें अंधकारको नाश करके वास्तविक प्रकाश करनेवाला, संसारकी सर्वोत्तम परमाणुओंसे बना हुआ परमौदारिकस्वरूप अरहंतदेवका शरीर उत्तम वर्णवाला है और शास्त्र भी उत्तम वर्णमयी यानी अक्षरमयी है अथवा एकान्तरूपी अंधकारको नाशकरके पदार्थोंका वास्तविकस्वरूप बतलानेके कारण और प्रकाशमयी स्याद्वादस्वरूप

होनेसे उत्कृष्टवर्णवाला है। एवं षट्कायके जीवोंको अभयदान देनेवाला, परमशांति वरपानेवाला गुरुका शरीर तो सावर्णका धारक है ही) जिनेन्द्र भगवान, तथा शास्त्र और गुरुओंका, क्षीरसागरके समान निर्मलता पवित्रता आदि गुणोंको रखनेवाले जलसमूह के द्वारा मैं पूजन करता हूं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्यके धारक और जन्ममरणादि अठारह दोषोंसे रहित, तथा चौंतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य और चार अनन्तचतुष्टय इस प्रकार ४६ गुणोंसे सहित परम ब्रह्म श्रीअरहंत परमेष्ठीके लिये मैं जन्म जरा तथा मरणको नष्ट करनेके लिये जलको समर्पण करता हूं।

ओं ह्रीं श्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनेंद्रभगवानके मुखकमलसे उत्पन्न, स्याद्वादनयसे (अनेकांतवादसे) भरे हुए

तथा आचारादि बारह अंगोंस्वरूप श्रुतज्ञानको जन्म जरा और मरणको विनाश करनेके लिये जल समर्पण करता हूं ।

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रादि अनेक गुणोंसे शोभायमान आचार्य उपाध्याय और समस्त साधुवर्गको मैं जन्म, जरा, मरणको नाश करनेकेलिये जल समर्पण करता हूं ।

ताम्यत्त्रिलोकोदरमध्यवर्तिसमस्तसत्त्वाहितहारिवाक्यान् ।
श्रीचंदनैर्गन्धविलुब्धभृंगैर्जिनेंद्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहं ॥ २ ॥

अनेक प्रकारके सांसारिक संतापसे पीडित त्रिलोकवर्ती समस्त जीवोंके दुःखको दूर करनेवाले जिनके वाक्य [उपदेश] हैं ऐसे जिनेश्वरदेव तथा शास्त्र और गुरुओंका चंदनके द्वारा अर्चन करता हूं। जिस चंदनकी सुगंधतासे भ्रमर लोभी होगये हैं अर्थात् गंधको ग्रहण करनेकेलिये जिस चंदन पर भौंरे आगये हैं ।

ओं ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

संसारके दुःखमयी संतापको विनष्ट करनेकेलिये मैं चन्दन अर्पण करता हूं । (शेष सभी अर्थ पहलेके समान है)

अपारसंसारमहासमुद्रप्रोत्तारणे प्राज्यतरीन् सुभक्त्या ।
दीर्घाक्षतांगैर्धवलाक्षतौघैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥३॥

भाषा—अपार संसाररूपी महासागरसे जीवोंको पार करनेके लिये बडी नौकाके

समान श्रीजिनेशदेव, शास्त्र तथा गुरु महाराजकी भक्तिपूर्वक दीर्घ (बडे) अखंड तथा उज्ज्वल अक्षतों द्वारा पूजन करता हूं ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं ....अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान्........।

भाषा—अविनाशी पद (मोक्ष) पानेके लिये अक्षतोंको मैं समर्पण करता हूं। (शेष प्रथम मंत्रके समान है।

विनीतभव्याब्जविबोधसूर्यान् वर्यान् सुचर्याकथनैकधुर्यान्।
कुन्दारविंदप्रमुखप्रसूनैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥ ४ ॥

भाषा—विनयसहित भव्य जीवरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्य समान तथा सर्वोत्तम एवं पवित्र चारित्रको कहनेमें सबसे अग्रेसर ऐसे अरहंत देव, शास्त्र तथा गुरुको कुंद, कमल आदि अनेक प्रकारके फूलोंसे पूजता हूं ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं........कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं........।

कामदेवको नाश करनेकेलिये फूल समर्पण करता हूं [अवशिष्ट भाग प्रथम मंत्रके तुल्य है]

कुदर्पकन्दर्पविसर्पसर्पप्रसह्यनिर्णाशनवैनतेयान् ।
प्राज्याज्यसारैश्चरुभीरसाढ्यैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहं ॥

भाषा—खोटे गर्वके धारक, कामदेवरूपी बहुत विस्तृत (बहुत बडे) सर्पको बलात्कारपूर्वक नाश करनेमें गरुडके समान जिनेंद्र देव, शास्त्र तथा गुरुको बहुत घृतसे सुंदर तथा रसोंसे परिपूर्ण नैवेद्यों [पकवानों] द्वारा अर्चन करता हूं ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं ....क्षुद्रोगविनाशनाय नैवेद्यं....।

भाषा—क्षुधा (भूख) रूपी रोगको नाश करनेके लिये नैवेद्य समर्पण करता हूं ॥

[शेष भाग पूर्ववत् समझना ।]

ध्वस्तोद्यमान्धीकृतविश्वविश्वमोहान्धकारप्रतिघातदीपान् ।
दीपैः कनत्कांचनभाजनस्थैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहं ॥

भाषा—जिस मोहरूपी अन्धकारने आत्माके हितकारक उद्यमको (सावधानीको) नष्ट कर दिया है तथा समस्त संसारको अंधा बना दिया है उस मोहान्धकारको हटाने में दीपके समान अरहंतदेव, शास्त्र गुरुको सुवर्णपात्रमें रक्खे हुए जाज्वल्यमान दीपकोंसे अर्चन करता हूं ॥

ओं ह्रीं .... मोहांधकारविनाशनाय दीपं........।

मैं अपने मोहरूपी अन्धकारको हटानेके लिये दीपको समर्पण करता हूं। (शेष प्रथपके समान है)।

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टजालसंधूपने भासुरधूमकेतून्।
धूपैर्विधूतान्यसुगंधगंधैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥ ७ ॥

दुष्ट आठ कर्मरूपी ईंधन (काठ-लकडी) के भारी ढेरको जलानेमें देदीप्यमान अग्निके समान अरहंतदेव शास्त्र तथा गुरुका उस धूपसे पूजन करता हूं जिस धूपकी सुगंधिने अन्य सुगंधोंको भी दवा दिया है—अर्थात् जिसकी तीव्र सुगंधिके सामने अन्य किसी पदार्थकी सुगंधि मालूम नहीं होती है ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं.... अष्टकर्मदहनाय धूपं ....।

मैं आठ कर्मोंको जलाने लिये धूपको समर्पण करता हूं। (परिशिष्ट भाग प्रथम मंत्रके सदृश है)

क्षुभ्यद्विलुभ्यन्मनसामगम्यान् कुवादिवादाऽस्खलितप्रभावान्।
फलैरलं मोक्षफलाभिसारैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥ ८ ॥

क्षुब्ध [क्षोभसहित—उद्वेगवाले] तथा लुब्ध (लोभी) जीवोंको अगम्य (नहिं जानने योग्य) तथा कुवादियोंके साथ वाद [शास्त्रार्थ] करनेमें अस्खलित प्रभावशाली (अर्थात् वाद करनेमें किसी प्रकार भी हीनशक्ति नहीं हैं) ऐसे जिनेंद्र भगवान, शास्त्र तथा गुरुको मोक्षरूपी फल देनेके कारण सारभूत [उत्तम] फलोंसे पूजता हूं ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं ... मोक्षफलप्राप्तये फलं.......।

मोक्ष फल पानेके लिये मैं फलको समर्पण करता हूं। (शेष पूर्ववत्)

सद्वारिगंधाक्षतपुष्पजातैर्नैवेद्यदीपामलधूपधूम्रैः ।
फलैर्विचित्रैर्घनपुण्ययोगान् जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥ ९ ॥

निर्मल जल, चंदन अक्षत और पुष्पोंद्वारा तथा नैवेद्य, दीप, सुगंध धुआं छोडनेवाली निर्मल धूप तथा अनेक प्रकारके फलों द्वारा पुण्यबंध करानेवाले जिनेंद्रदेव, शास्त्र तथा गुरुका मैं पूजन करता हूं ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं.... अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घं.......।

मैं मुक्तिपद पानेके लिये अर्घ समर्पण करता हूं। (शेष प्रथमके समान है।)

विशेष—गृहस्थ अष्टद्रव्य द्वारा पूजन करता है। किन्तु मुनिवर केवल भाव पूजन करते हैं। उसके दो कारण हैं मुनि एक तो निष्परिग्रह हैं इसलिये पूजनके लिये द्रव्य कहांसे लावें। इसके सिवाय दूसरा कारण यह भी है कि भावोंकी उत्कृष्ट निर्मलताके कारण मुनियोंको पूजनीय—अरहंतदेवादिके साथ एक प्रकारसे साक्षात् संबंध है क्यों कि उन्होंने जब प्रतिसमय जप, ध्यान द्वारा प्रतिदिनके स्तवनादि द्वारा अरहंतदेवको अपने हृदयमें विराजमान कर लिया है फिर जलादि द्रव्योंके आश्रयसे संबंध करनेकी क्या आवश्यकता? जिन पुरुषोंका [मंत्री आदि] राजासे साक्षात् संबंध है उनको यह आवश्यकता नहीं रहती कि वह कुछ द्रव्य भेट करके राजासे मिलें और साधारण पुरुष कुछ न कुछ द्रव्य भेट करके राजासे मिल सकेगा। यही बात गृहस्थके लिये है अभी तक उसने इतनी योग्यता प्राप्त नहीं की है कि वह अपने मनको अरहंतादि देवोंके पास विना किसी सहारेके पहुंचा सके उसके लिये मंदिर होना चाहिये उसमें अरहंत प्रतिमाका होना आवश्यक है इसके अतिरेक्त अन्य भी कारण उसको चाहिये तब अरहंतदेवसे मिल सकेगा। इसी प्रकार पूजन करते समय भी केवल प्रतिबिम्ब दर्शनसे ही उस ऊंचे ध्येय पर नहीं पहुंच सक्ता है किन्तु यहां भी उसको कुछ अन्य आलंबन चाहिये। इसलिये उसके पास इन अष्टद्रव्योंका होना आवश्यक है। इसीलिये

पूजनमें गृहस्थ कहता है कि मैं जलके द्वारा, फल आदिके द्वारा आपका पूजन करता हूं। अर्थात् साक्षात् (विना किसी सहारेके) पूजन करनेमें असमर्थ हूं।

ये पूजां जिननाथशास्त्रयमिनां भक्त्या सदा कुर्वते
त्रैसंध्यं सुविचित्रकाव्यरचनामुच्चारयंतो नराः ॥
पुण्याढ्या मुनिराजकीर्तिसहिता भूत्वा तपोभूषणास्
ते भव्याः सकलावबोधरुचिरां सिद्धिं लभंते परां ॥ १ ॥

इत्याशीर्वादः।

भाषा—जो पुरुष जिनेंद्रदेव, शास्त्र तथा गुरुओंकी सर्वदा भक्तिपूर्वक अनेक प्रकारके छंद, अलंकारादि परिपूर्ण वाक्योंका उच्चारण करते हुए तीन समय प्रातः काल मध्याह्न काल तथा सायंकाल पूजन करते हैं वे पुण्यशाली भव्य जीव स्वर्गादिगतियोंसे आकर तपरूपी भूषणसे भूषित होकर मुनीश्वरोंकी निर्मल कीर्तिको धारण करके केवलज्ञानसे रमणीय उत्कृष्ट सिद्धिको (मुक्तिको) पाते हैं।

(ये आशीर्वाद वाक्य हैं। यहांपर पुष्पांजलिक्षेपण करना चाहिये)

अब चौवीस तीर्थंकरोंका स्तवन करते हैं—

वृषभोऽजितनामा च संभवश्चाभिनंदनः ।
सुमतिः पद्मभासश्च सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥ १ ॥
चन्द्राभः पुष्पदंतश्च शीतलो भगवान्मुनिः ।
श्रेयांश्च वासुपूज्यश्च विमलो विमलद्युतिः ॥ २ ॥
अनंतो धर्मनामा च शांतिः कुंथुर्जिनोत्तमः ।
अरश्च मल्लिनाथश्च सुव्रतो नमितीर्थकृत् ॥ ३ ॥
हरिवंशसमुद्भूतोऽरिष्टनेमिर्जिनेश्वरः ।
ध्वस्तोपसर्गदैत्यारिः पार्श्वो नागेन्द्रपूजितः ॥ ४ ॥
कर्मान्तकृन्महावीरः सिद्धार्थकुलसंभवः ।
एते सुरासुरौघेण पूजिता विमलत्विषः ॥ ५ ॥
पूजिता भरताद्यैश्च भूपेन्द्रैर्भूरिभूतिभिः ।
चतुर्विधस्य संघस्य शांतिं कुर्वन्तु शाश्वतीम् ॥ ६ ॥

जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिः सदास्तु मे।
सम्यक्त्वमेव संसारवारणं मोक्षकारणम् ॥ ७ ॥

भाषा—श्री वृषभनाथ जी, अजितनाथजी, संभवनाथजी, अभिनन्दननाथजी, सुमतिनाथजी, पद्मप्रभनाथजी, चन्द्रप्रभजी, सुपार्श्वनाथजी, चन्द्रप्रभजी, पुष्पदंतजी, शीतलनाथजी, श्रेयांसनाथजी, वासुपूज्यजी, निर्मलकांतिके धारक विमलनाथजी, अनन्तनाथजी, धर्मनाथजी, शांतिनाथजी, कुंथुनाथजी, अरनाथजी, मल्लिनाथजी, मुनिसुव्रतनाथजी, नमिनाथजी, हरिवंशमें उत्पन्न अरिष्टनेमिनाथजी तथा धरणेन्द्र द्वारा पूजित और यक्ष शरीरके धारक कमठके द्वारा किये हुए उपसर्गको अचल आत्म-ध्यानके द्वारा नष्ट करनेवाले श्रीपार्श्वनाथ एवं सिद्धार्थराजाके यहां जन्म लेनेवाले तथा कर्म जंजालका अंत [नाश] करनेवाले श्रीमहावीर जिनेश्वर इसप्रकार मनोहर कांतिके धारक देवों तथा असुरोंके समूह द्वारा पूजित तथा अपार विभूतिके धारक भरत, श्रेणिकादि अनेक सम्राटों [राजाओंके राजा] द्वारा पूजित ये चौवीस तीर्थंकर चार प्रकारके संघ (श्रावक, श्राविका, मुनि, अर्जिका) के लिये अविनश्वर शांतिको करें ॥ ६ ॥

जिनेन्द्रभगवानमें सर्वदा मेरी परमभक्ति हो। क्योंकि जिनेशदेवकी वास्तविक भक्ति (श्रद्धा) रूप सम्यग्दर्शन ही वास्तवमें संसारको निवारण करनेवाला एवं मोक्षको करनेवाला है ॥ ७ ॥

(यहां पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये)

श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः सदास्तु मे।
सम्यग्ज्ञानमेव संसारवारणं मोक्षकारणं ॥ ८ ॥

भाषा—सर्वज्ञकथित शास्त्रमें मेरी सर्वदा भक्ति होवे, क्योंकि संसारको नाश करनेवाला तथा मोक्षको देनेवाला सम्यग्ज्ञान ही है अर्थात् सम्यग्ज्ञान मोक्षका कारण है, और वह शास्त्रों द्वारा उत्पन्न होता है। इसलिये ज्ञान उत्पन्न करनेके लिये शास्त्रमें पूज्य भावका होना परम आवश्यक है जो कि मुझमें सर्वदा विद्यमान रहो।

यहां पुष्पोंकी अंजलि चढाना चाहिये।

गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिः सदाऽस्तु मे।
चारित्रमेव संसारवारणं मोक्षकारणं ॥ ९ ॥

भाषा—निर्दोष तपश्चरणको करनेवाले गुरुओं—आचार्य, उपाध्याय, तथा साधुवर्गमें मेरा सर्वदा भक्तिभाव उत्पन्न होवे, क्योंकि संसारको नष्ट करनेवाला तथा मोक्षको करनेवाला सम्यक्चारित्र ही है अर्थात् क्षायिकसम्यक्त्व तथा क्षायिकज्ञानके होजाने पर भी क्षायिकचारित्रके विना कर्मोंसे मुक्ति नहीं होती है इसलिये सम्यक्चारित्र इस अपेक्षा मोक्षका प्रधान कारण है वह चारित्र मुख्यतया निःसंग मुनीश्वरोंको प्राप्त होता है इसलिये गुरुओंमें विनीत पूज्यभावोंका होना आवश्यक है अतः मुझको गुरु भक्ति प्राप्त हो ॥

यहां पुष्पांजलि चढाना चाहिये।

अथ देवजयमाला।

वत्ताणुट्ठाणे जणधणुदाणे पइपोसिउ तुहु खत्तधरु।
तव चरणविहाणे केवलणाणे तुहु परमप्पउ परमपरु ॥ १ ॥

भाषा—हे भगवन्! आपने सांसारिक प्रजाको (संसारी जीवोंको) व्रतानुष्ठानको तथा

परमसुखको करनेवाले रत्नत्रयको देकर पुष्ट किया इसलिये आप ही वास्तवमें क्षत्रिय (छत्रधर) हैं क्योंकि सब दुःखित जीवका रक्षक ही क्षत्रिय कहलाता है और तपश्चरण करने पर आप केवलज्ञानधारी हुए इसलिये आप मुनीश्वर, गणधरादिक उत्तम पुरुषोंमें भी उत्तम हो गये ॥ १ ॥

पद्धरी छंद ।

जय रिसह रिसीसरणमियपाय । जय अजिय जियंगमरोमराय ॥
जय संभवसंभवकयविओय । जय अहिणंदण णंदियपओय ॥ २ ॥

भाव:—ऋषीश्वरों (गणधरादिकों) द्वारा जिनके चरण कमल नमित (पूजित) हैं ऐसे हे ऋषभनाथ ! आप जयवंते हों । कामदेव, तथा रागको जीतनेवाले हे अजितनाथ जिनेश्वर ! आप जयशाली हों । जिन्होंने दुःखमयी सांसारिक दुःखको हटा दिया है ऐसे हे सम्भवनाथ ! आप जयवान हों । दर्शनोपयोग तथा ज्ञानोपयोगके बढानेवाले, हे अभिनंदननाथ ! आपकी जय होय ॥ २ ॥

जय सुमइ सुमइसम्मयपयास । जय पउमप्पह पउमाणिवास ।
जय जयहि सुपास सुपासगत्त । जय चंदप्पह चंदाहवत्त ॥ ३ ॥

भाषा—सत्यमतका प्रकाश करनेवाले, केवलज्ञानधारी हे सुमतिनाथ भगवान ! आप जयशील हों। केवलज्ञान, केवलदर्शनादिक तथा कीर्ति कांति आदि लक्ष्मीके निवासालय हे पद्मप्रभ जिनेश ! आप जयधारी हों। समचतुरस्रसंस्थान तथा वज्र-वृषभनाराचसंहननके कारण असाधारण सुंदरता युक्त हैं पार्श्वभाग (पसवाड़े) जिस में, ऐसे सुंदर शरीरवाले अथवा कर्मरूपी जालसे दृढ़ बंधे हुए संसारी जीवोंकी रक्षा करनेवाले (सुष्ठुतया पार्श्वंगान् आ समन्तात् त्रायते) हे सुपार्श्वनाथ भगवान् ! आपकी सदा जय हो। चंद्रप्रभा (चांदनी) के समान जीवोंको सुख, शांति, तथा आल्हादका देनेवाला एवं अज्ञानान्धकारको भगानेवाला है मुख जिनका ऐसे हे चन्द्रप्रभ जिनेश ! आप सर्वदा जयवंत हों।

जय पुप्फयंत दंततरंग। जय सीयल सीयलवयणभंग ॥
जय सेय सेयकिरणाहसुज्ज। जय वासुपुज्ज पुज्जाणपुज्ज ॥ ४ ॥

भाषा—जिन्होंने अंतरंगको दमन किया है अर्थात् मनका अथवा उसके संबंधसे होनेवाले क्रोध, मान लोभादि विकारोंका क्षय करनेवाले हे पुष्पदंत जिन ! आप जयशील हों। संसारके असह्य संतापसे तडफडाते हुए जीवोंके लिये शीतल वचनशैली के धारक अथवा एकान्तवादोंके अज्ञानतापसे इधर उधर छटपटानेवाले जीवोंके

लिये शीतल, सप्तभंगी (स्याद्वाद) के धारक हे शीतलनाथं भगवान् ! आप सदा जयवंत हों । सूर्यके समान कल्याण स्वरूप किरणोंके धारण करनेवाले अर्थात् (जिस प्रकार लोकमें प्रकाश करनेवाली सूर्यकी किरणें हैं उसी प्रकार संसारका कल्याण करनेवाली आपकी किरणें हैं) हे श्रेयांसनाथ स्वामिन् ! आप सर्वदा जयवान हों । देव, मनुष्य तिर्यंचोंसे पूज्य इन्द्र, अहमिन्द्र, नरेंद्र, चक्रवर्ती, गणधर, मुनीश्वर तथा सिंहादिकोंके द्वारा पूजनीय हे वासुपूज्य जिनराते ! आप सर्वदा जयवान्‌ हों ॥ ४ ॥

जय विमल विमलगुणसेढिठाण । जय जयहि अणंताणंतणाण।
जय धम्म धम्मतित्थयर संत । जय सांति सांति विहियायवत्त ॥

भाषा—क्षुधादिक दोषोंसे रहित निर्मल गुणोंको पानेके लिये श्रेणियोंके समान (अर्थात्—मरण क्षुधादिक मैलसे रहित निर्मल गुण आपके आश्रयसे मिलते हैं इसलिये उच्च मोक्ष महलमें रक्खे हुए केवल ज्ञानादि निर्मल गुणोंके प्राप्त करानेके लिये आप श्रेणी—जीनाके समान हो) हे विमलनाथ देव ! आप सदा जयशाली रहो। त्रिलोकवर्ती जीव, पुद्गलादि छह द्रव्योंके अनंतानंत भेदोंको तथा उनकी अनंतानंत पर्यायोंको एक साथ प्रत्यक्ष जाननेवाले अनंतज्ञानधारी श्रीअनंतनाथ जिनेश्वर ! आप बारं-

धार जयशाली हों। नरक निगोद तथा तिर्यञ्चादि योनियोंमें दुःखसे व्याकुल संसारसागरके कायिक, मानसिक दुःखरूपी भवरोंके चक्करमें पडे हुए तथा जन्म, मरणादिरूपी कुंभीर, मगरादि दुष्ट जीवोंसे रोदे हुए एवं पार करनेकेलिये भुजबल, नौका घाट आदि आश्रयोंसे रहित जीवोंका उद्धार करनेके लिये सम्यग्दर्शनादिरूपी अथवा क्षमा, शौच, दया आदि स्वरूप धर्मतीर्थके (धर्मरूपी घाट) करनेवाले श्रीधर्मनाथ तीर्थंकर सर्वदा जयवंत हों। आहारादिक संज्ञायोंके अथवा ज्ञानावरणादि कर्मोंके प्रचंड संतापको दूर करनेकेलिये छत्रके धारक अथवा दुष्कर्मोंके असह्यसंतापसे संतप्त जीवोंकी रक्षा करनेके लिये सदुपदेशरूपी छत्रको (छातेको) प्रदान करनेवाले श्रीशांतिनाथ महाराज हमारे हृदयमें जयशाली रहैं।

जय कुंथु कुंथु पहु मंगि सदय। जय अर अर माहर विहियसमय ॥
जय मल्लि मल्लि आदामगंध। जय मुणिसुव्वय सुव्वयणिबंध ॥

भाषा—कुंथु आदिक समस्त संसारवर्ती जीवोंपर परमदयालु श्रीकुंथुनाथ जिनवर जयकारको प्राप्त हों। तृप्तिकारक अपार अलौकिक निराकुल सुखको प्रदान करनेवाली मुक्ति सुंदरीके वर दरिद्र जीवोंकी दरिद्रता नष्ट करनेके लिये (अर्थात् मुक्ति प्राप्त

करानेके लिये) अनुकूल शासनके बनानेवाले श्रीअरनाथतीर्थंकर आपकी सर्वदा जय हो। रोग शोकादिरूपी दुर्गंधिके नष्ट करनेवाले तथा मालती पुष्पोंकी मालाके समान आनंदकारिणी धार्मिक सुगंधिके फैलानेवाले अथवा मालती पुष्पमालाके समान प्रमोद्-कारी यश अथवा सुगंधिके धारक श्रीमल्लिनाथ भगवान् ! आपका सर्वदा जयकार जयकार हो। मुनीश्वरोंके पवित्र चारित्रको उत्पन्न करनेवाले हे मुनिसुव्रतनाथ तीर्थेश्वर ! आप जयवंत हों।

जय णमि णमियामरणियरसामि। जय णेमि धम्मरहचक्कणेमि।
जय पास पासछिंदणकिवाण। जय वड्ढमाण जसवड्ढमाण॥७

भाषा—देव समूहके स्वामी=इंद्रों द्वारा पूजित हे नमिनाथ जिनवर! आप जयशाली रहो। धर्मरूपी रथको चलानेकेलिये चक्रनेमि (पहियोंके धुरा) के समान हे नेमिनाथ जिनेश्वर ! आप जयशील हों। संसार जालको काटनेके लिये खड्गके समान श्रीपार्श्वनाथ जिनराज ! आप जयवंत हों। एवं तीन लोकमें निर्मलकीर्तिसे बढे हुए श्रीवर्द्धमान तीर्थेश्वर ! आपकी सर्वदा जय हो॥ ७॥

घत्ता ।

इह जाणिय णामहिं दुरियविरामहिं परहिंवि णमिय सुरावलिहिं ।
अणहणहिं अणाइहिं समियकुवाइहिं पणविवि अरंहतावलिहिं ॥१॥

भाषा-इसप्रकार दुष्कर्मोंको नाश करनेवाले, देवसमूहद्वारा परिपूजित, अनिधन (अविनाशी) तथा अनादि (आदिरहित) एवं कुवादियोंको शान्त करनेवाले सर्वोत्तम इन ऋषभ आदि अरहंतोंके समूहको नमस्कार करता हूं ।

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

भाषा—श्रीवृषभनाथ जिनेश्वरसे लेकर श्रीवीरनाथ जिनवर पर्यंत चौवीस तीर्थंकरोंको महार्घ अर्पण करता हूं ।

विशेष--पूजनके तथा जयमालाके अन्तिम अर्घको ही प्रायः महार्घ कहते हैं ।

अथ शास्त्र जयमाला ।

संपइसुहकारण कम्मवियारण भवसमुद्दतारणतरणं ।
जिणवाणि णमस्समि सत्तिपयासमि सग्गमोक्खसंगमकरणं ॥१॥

हे जिनेन्द्रभगवानके मुखसे विनिर्गत सरस्वती देवी ! सुख संपत्तिकी दाता तुम्ही हो,

कर्मोंकी जड काटनेवाले सच्चे उपदेशको प्रदान करनेसे वर्तमान समयमें कर्मोंको भेदनेवाली तुम्हीं हो, तथा धर्मतीर्थके चलानेवाले तीर्थंकरोंके अभावमें असारसंसार सागरसे जीवोंको पार लगानेके लिये तुम्हीं नौका हो, एवं स्वर्ग तथा मोक्षका संगम करानेवाली तुम ही हो। इसलिये जिनेश्वरवाणी! तुमको नमस्कार करता हूं तथा तुम्हारी सुखमयी पवित्र आराधनामें अपनी वाचनिक, शारीरिक तथा मानसिक शक्तिको प्रकट करता हूं॥ १॥

जिणंदमुहाओ विणिग्गयतार। गणिंदविगुंफिय गंथपयार।
तिलोयहिमंडण धम्मह खाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि॥

जिनेंद्रके मुखकमलसे जिसका जन्म हुआ और फिर गणधर देवने जिसकी शास्त्र रूपमें (द्वादशांग रूपमें) रचना की ऐसी सत्य संयम, शौचादि धर्मरत्नोंको उत्पन्न करनेवाली खानि तथा तीन लोककी भूषणस्वरूप हे जिनवरवाणि! आपको सदा नमस्कार करता हूं।

अवग्गह ईह अवाय जु एहिं। सुधारणभेयहिं तिण्णि सएहिं।
मई छत्तीस बहुप्पमुहाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि॥२॥

अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा तथा बहु बहुविधादिक भेदोंसे मतिज्ञानके ३३६ तीनसौ छत्तीस भेद हैं। उस मतिज्ञानस्वरूप हे जिनवाणि ! तुमको सदा प्रणाम है॥

सुदं पुण दोण्णि अणेयपयार। सुबारहभेय जगत्तयसार॥
सुरिंदणरिंदसमुच्चिओ जाणि। सया पणमामि जिणिंदहवाणि॥

तीन लोकमें सर्वोत्तम श्रुतज्ञानके अंगबाह्य तथा अंगप्रविष्ट ये दो भेद हैं इनमें से अंगप्रविष्टके बारह भेद हैं और अंगबाह्य अनेक प्रकारका है ऐसी श्रुतज्ञानस्वरूप इंद्र तथा चक्रवर्तियोंसे पूजित हे जिनभारती ! तुमको मेरा सदा नमस्कार है॥४॥

जिणिंदगणिंदणरिंदह रिद्धि। पयासइ पुण्ण पुराकिउलद्धि॥
णिउग्गु पहिल्लउ एहु वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि॥

तीर्थंकर, गणधर तथा चक्रवर्त्यादिक महापुरुषोंकी ऋद्धि तथा पूर्वभवमें तीर्थंकरादिक होनेके लिये उपार्जन किये हुए पुण्यकर्मको प्रकट करनेवाले प्रथमानुयोगस्वरूप तुमको जानकर हे जिनेन्द्रवाणि ! तुम्हारे लिये सदा नमस्कार करता हूं॥ ५ ॥

जु लोय अलोयह जुत्ति जणेइ। जु तिण्णि वि कालसरूव भणेइ।
चउग्गइ लक्खण दुज्जउ जाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि॥

जो लोक तथा अलोककी रचना विस्तार आदिको प्रगट करता है तथा भुत, भविष्यत, वर्तमान कालोंका स्वरूप बतलाता है और मनुष्य, देव, नरक, तिर्यंच गतियों का चित्र स्पष्ट दिखलाता है ऐसे दूसरे करणानुयोगस्वरूप जानकर हे वाणि ! तुमको मेरा नमस्कार है ॥ ६ ॥

जिणिंदचरित्तविचित्त मुणेइ । सुसावइधम्मह जुत्ति जणेइ ॥
णिउग्गु वि तिज्जउ इत्थु वियाणि । सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥७

जिसके द्वारा मुनीश्वरोंका विचित्र चारित्र जाना जाता है तथा जो श्रावक धर्मका प्रगट करनेवाला है ऐसे तीसरे करणानुयोगस्वरूप जान कर हे जिनभारती ! तुमको मैं सदा प्रणाम करता हूं ॥ ७ ॥

सुजीव अजीवह तच्चह चक्खु । सुपुण्ण विपाय विबंध विमुक्खु ॥
चउत्थुणिउग्गुविभासिय जाणि । सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥८॥

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, बंध, मोक्षादिक तत्त्वोंको यथार्थ प्रगट करनेवाले चौथे द्रव्यानुयोगको विभासित करनेवाली जानकर हे जिनवाणि ! तुमको मेरा नमस्कार है ॥

तिभेयहिं ओहिविणाणविचित्तु । चउत्थु रिजोविउलं मइउत्तु ॥

सुखाइय केवलणाण वियाणि । सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥

देशावधि, परमावधि, तथा सर्वावधि ऐसे तीन भेद रूप और अनुगामी, अननुगामी आदि अनेक भेदस्वरूप अवधिज्ञान है तथा ऋजुमति और विपुलमति भेदरूप चौथा मनःपर्ययज्ञान है एवं ज्ञानावरण कर्मके क्षयसे उत्पन्न होनेवाला केवलज्ञान है। इन तीन ज्ञान स्वरूप जान कर हे जिनवरवाणि ! तुमको सदा प्रणाम करता हूं ॥

जिणिंदह णाणु जगत्तयभाणु । महातमणासिय सुक्खणिहाणु ॥
पयच्चउ भत्तिभरेण वियाणि । सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥

जिनेन्द्रभगवानका ज्ञान महामोहांधकारको नाश करनेवाला तथा समस्त चराचर पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाला तीन लोकमें सूर्यके समान है और अनंतसुखका निधान (भंडार) है। ऐसा निश्चय कर जिनवचनावली ! तुमको मैं बडे भक्तिके भारसे नम्र होकर सदा नमस्कार करता हूं ॥ १० ॥

पयाणि सुबारहकोडि सयेण । सुलक्खतिरासिय जुत्तिभरेण ॥
सहस अट्ठावण पंच वियाणि । सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥

इस सकल द्वादशांगरूप श्रुतज्ञानके एकसौ बारह करोड तिरासी लाख अट्ठावनहजार

पांच ११२८३५८००५ पद हैं। ऐसी जिनेंद्रभारतीको मैं सदा नमस्कार करता हूं।

विशेष—श्रुतज्ञानके अक्षर एक कम एकट्ठी (१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ संख्या द्विरूप वर्गधारामें छठवें स्थान पर होती है) मपाण हैं। एक पदमें सोलहसौ चौंतीस करोड तिरासी लाख सात हजार आठसौ अठासी १६३४८३०७८८८ अक्षर होते हैं। इन एक पदके अक्षरोंका श्रुतज्ञानके संपूर्ण अक्षरोंमें भाग देनेसे ११२८३५८००५ पूर्णपद बनते हैं। इसके सिवाय आठ करोड एकलाख आठ हजार एकसौ पचहत्तर ८०१०८१७५ अक्षर शेप बनते हैं। सो इनमें सामायिकादि चौदह मकीर्णक हैं जिनको अंगबाह्य कहते हैं। इस मकार श्रुतज्ञानमें पदोंकी संख्या है ॥११॥

इकावण कोडिउ लक्ख अठेव। सहसचुलसीदिसया छक्कं।
सढाइगवीसह गंथपयाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि॥

यदि इस संपूर्ण श्रुतज्ञानके बत्तीस अक्षरवाले अनुष्टुप श्लोक बनाये जांय तो इक्यावन करोड आठलाख चौरासी हजार छहसौ अट्ठाईस अपुनरुक्त श्लोक होते हैं। ऐसी जिनभारतीको मैं सदा मणाम करता हूं॥ १२॥

घत्ता।

इह जिणवरवाणि विसुद्धमई। जो भवियण णियमण धरई।

सो सुरणरिंद संपइ लहई । केवलणाण वि उत्तरई ॥ १३ ॥

जो निर्मलबुद्धिधारी भव्यपुरुष ऐसी पवित्र जिनवाणीको अपने मनमें धारण करता है वह महापुरुष देवोंकी तथा चक्रवर्ती नारायण आदिकी बडी विभूतिको प्राप्त करता है और फिर केवलज्ञानको पाकर संसार महासागरके पार हो जाता है ॥ १३ ॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

अरहंतभगवानके मुख कमलसे उत्पन्न, स्याद्वादनयसे युक्त द्वादशांगरूप श्रुतज्ञानके लिये महार्घ समर्पण करता हूं ।

अथ गुरुजयमाला ।

भवियह भवतारण, सोलहकारण, अज्जवि तित्थयरत्तणहं ।
तवकम्म असंगइ दयधम्मंगइ पालवि पंच महव्वयहं ॥ १ ॥

जो संसार सागरसे तारनेवाली दर्शनविशुद्धयादि सोलह भावनाओंको भाकर तीर्थंकर नामक परमशुभ, अलभ्य नामकर्मको उपार्जन करके अनशनादि, तथा स्वाध्यायादि दुर्द्धर तपोंको करते हैं तथा अंतरंग, बहिरंग परिग्रहसे रहित होकर दयाधर्मके अंगभूत पांच महाव्रतोंको पालते हैं ऐसे ऋषीश्वरोंको बारं बार नमस्कार है।

विशेष-व्रत वास्तवमें एक अहिंसा ही है, उसीको पूर्णतया पालनेके लिये अथवा उसके विरोधक अनेक प्रकारके दोषोंको निर्मूल करनेके लिये ही सत्य ब्रह्मचर्यादिक पांच भेद किये गये हैं ॥ १ ॥

वंदामि महारिसि सीलवंत । पंचेंदियसंजम जोगजुत्त ॥
जे ग्यारह अंगह अणुसरंति । जे चउदह पुव्वह मुणि थुणंति॥

मैं उन महाऋषियोंको वंदना करता हूं जो अठारह हजार प्रकारके शीलके धारक हैं तथा पांच इन्द्रियोंके दमनरूप संयमसे विभूषित हैं और ग्यारह अंगके पाठी हैं एवं चौदह पूर्वको जानकरके जो ऋषीश्वर जिनेंद्र भगवानका प्रतिदिन स्तवन करते हैं ॥ २ ॥

पादाणुसारवर कुट्ठबुद्धि । उप्पण्णु जाह आयासरिद्धि ॥

जे पाणाहारी तोरणीय । जे रुक्खमूल आतावणीय ॥ ३ ॥

जिन मुनीश्वरोंके पादानुसारिणी, कोष्ठस्थधान्योपमा तथा आकाशगामिनी ऋद्धि उत्पन्न हुई हैं तथा जो मुनिवर अपने पाणिपात्रमें (हाथोंमें) रक्खे हुए भोजनको लेते हैं और नदी किनारे, वृक्षके नीचे और धूपमें तपते हैं ।

जे मोणिधाय चंदाहणीय । जे जत्थत्थवणि णिवासणीय ॥

जे पंचमहव्वय धरणधीर । जे समिदिगुत्तिपालणहिं वीर ॥ ४ ॥

जे मुनिवर मौन धारण करके चंद्रमाके समान धनिक और दरिद्र गृहस्थके यहां भोजन करते हैं । अर्थात् चन्द्रमा जिसप्रकार प्रकाश करनेकेलिये दरिद्र तथा धनाढ्यकी अपेक्षासे अधिकता और न्यूनता नहीं करता है इसी प्रकार मुनीश्वर भी छियालीस दोष रहित शुद्ध गृहस्थके यहां वह चाहे धनाढ्य हो अथवा दरिद्र हो, आहार लेते हैं और जो जहां कहीं भी जीवजंतुरहित पवित्र वनप्रदेशमें निवास करते हैं तथा जो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, निष्परिग्रह इन पांच महाव्रतोंको धारण करनेमें बडे धीर हैं एवं ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण, प्रतिष्ठापन इन पांच समितियोंको तथा मनोगुप्ति वचनगुप्ति, कायगुप्ति इन तीन गुप्तियोंको पालनेमें बडे वीर हैं ॥ ४ ॥

जे वद्दहिं देह विरत्तचित्त । जे रायरोसभयमोहचत्त ॥
जे कुगइहि संवरु विगयलोह । जे दुरियविणासणकामकोह॥५॥

जो शरीरको आत्माका कारावास (जेलखाना) समझकर उसमें विरक्त रहते हैं तथा जो राग, द्वेष, भय मोहसे रहित हैं। जो नरकादि दुर्गतियोंका संवर करते हैं और लोभसे सदा अलग रहते हैं एवं जो योगीश्वर काम क्रोधादिकको नष्ट करनेवाले हैं॥५॥

जे जल्लमल्लतणलित्त गत्त । आरंभपरिग्गह जे विरत्त ॥
जे तिण्णिकाल बाहर गमंति । छट्ठट्ठम दसमउ तउ चरंति ॥ ६ ॥

षट् कायिक जीवोंके परमरक्षक होनेके कारण तथा विकारकारी इन्द्रियविलाससे बचनेके लिये स्नान न करनेके कारण जिन मुनियोंका शरीर कर्ण, नेत्र आदि अंगोंके मैलसे तथा पसीना, तृण आदिसे सहित है और आरंभसे तथा परिग्रहसे जो सर्वथा विरक्त हैं, जो इन्द्रियसंयमको दृढ़ रखनेकेलिये तथा निर्विघ्न आत्मध्यान करनेके लिये सर्वदा ग्राम नगरादिकसे बाहर ही विहार करते हैं, तथा जो मुनीश्वर वेला तेला चौला आदिक दुर्द्धर तपोंको तपते हैं ॥ ६ ॥

जे इक्कगास दुइगास लिंति । जे णीरसभोयण रइ करंति ॥

ते मुणिवर वंदउं ठियमसाण । जे कम्मडहइवरसुक्कझाण॥७॥

जे यतीश्वर कभी आहारका एक ग्रास ही लेते हैं, कभी दो कवल ही ग्रहण करते हैं अर्थात्—अपने आहारको एक ग्रासपर्यंत करके अवमोदर्य तपको पूर्णतया करते हैं जो योगिराज रसना इन्द्रियको वशमें रखनेके लिये सदा मधुर आदि स्वादिष्ट रसोंसे रहित नीरस भोजन रुचिसे करते हैं तथा जो तपस्वी श्मशानभूमिमें धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान द्वारा कर्मोंको नष्ट करते हैं उन मुनिवरोंके लिये मैं नमस्कार करता हूं ॥ ७ ॥

बारहविह संजम जे धरंति । जे चारिउ विकहा परिहरंति ॥
वावीस परीसह जे सहंति । संसारमहण्णउ ते तरंति ॥ ८ ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति तथा त्रस इन छह कायके जीवोंकी रक्षा तथा स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र, कर्ण तथा मन इन छह इन्द्रियोंको वशमें करना इस तरह बारह प्रकारके संयमको जो यतिराज धारण करते हैं तथा जो मुनिराज स्त्रीकथा भोजनकथा, देशकथा तथा राजकथा इन चारों विकथाओंको छोडते हैं और केवल आत्मध्यानमें ही मनको लगाकर जो ऋषिराज क्षुधा तृषा आदि वावीस परिषहोंको सहन करते हैं वे मुनिवर संसार महासागरको पार कर जाते हैं ॥ ८ ॥

जे धम्मबुद्धि महियालि थुणंति । जे काउस्सग्गो णिस गमंति ।
जे सिद्धिविलासणि अहिलसंति । जे पक्खमास आहार लिंति ॥

समस्त मनुष्य देवादिक जिनकी धर्मबुद्धिका सर्वदा स्तवन करते हैं, जो मुनींद्र कायोत्सर्ग द्वारा रात्रिको व्यतीत करते हैं तथा जो सर्वदा मुक्तिरूपी सुंदरीकी ही अभिलाषा रखते हैं और तप बढानेके लिये तथा शरीरको कृश करनेके लिये पक्षोपवास मासोपवास आदि उपवासोंको करते हैं ॥ ६ ॥

गोदूहण जे वीरासणीय । जे धणुहसेज वज्जासणीय ।
जे तववलेण आयास जंति । जे गिरिगुहकंदर विवर थंति॥

जो ऋषिवर गोदूहन आसन, वीरासन, धनुषासन, शय्यासन तथा वज्रासन धारण करते हैं, तपके प्रभावसे जो मुनिराज आकाशमें निराधार होते हुए गमन करते हैं तथा पर्वतोंकी गुफा कंदरा आदिमें ठहरते हैं।

जे सत्तुमित्त समभावचित्त । ते मुनिवर वंदउं दिढचरित्त ।
चउवीसह गंथह जे विरत्त । ते मुनिवर वंदउं जगपवित्त ॥ ७॥

जो यतीश्वर नाना उपसर्ग करनेवाले पुरुषमें तथा वैयावृत्य करनेवाले मनुष्य पुरुषमें समान भाव रखते हैं उन चारित्रधारी मुनिवरोंकेलिये मैं प्रणाम करता हूं। जो ऋषीश्वर चौदह अंतरंग तथा दश बहिरंग परिग्रहोंसे विरक्त हैं उन संसारको पवित्र करनेवाले अथवा संसारमें परम पवित्र मुनीश्वरोंके लिये प्रणाम करता हूं॥ ११॥

जे सुज्झाणिज्झा एकाचित्त । वंदामि महारिसि मोक्खपत्त ॥
रयणत्तयरंजिय सुद्ध भाव । ते मुणिवर वंदउं ठिदिसहाव ॥

जो परम ऋषीश्वर धर्म्य, शुक्लरूप शुभध्यानमें एकाग्रचित्त हैं अर्थात्–जिनका चित्त केवल धर्म्यध्यान अथवा शुक्लध्यानमें ही है, उन मोक्षमार्गस्वरूप ऋषीश्वरोंको नमस्कार करता हूं। जिन मुनीश्वरोंके पवित्रभाव रत्नत्रयसे सुशोभित हैं उन मुनिवरोंकी मैं सर्वदा वंदना करता हूं॥ १२॥

घत्ता।

जे तपसूरा, संजमधीरा, सिद्धवधू अणुराईया।
रयणत्तयरंजिय, कम्मह गंजिय, ते ऋषिवर मइ झाईया ॥१३॥

जो ऋषिनाथ दुर्द्धर तपश्चरण करनेमें शूरवीर हैं, दुर्लभ संयमको पालनेमें धीरवीर

, सिद्धरूपी स्त्रीमें अनुराग करने वाले हैं; रत्नत्रयसे विभूषित हैं तथा कर्मोंका विनाश
रनेवाले हैं उन मुनीश्वरोंका मैं सदा ध्यान करता हूं ॥ १२ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय-
सर्वसाधुभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

सम्यग्दर्शन. सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र आदि पवित्र गुणोंसे विभूषित आचार्य
पाध्याय, सर्वसाधुके लिये महार्घ समर्पण करता हूं ।

विशेष—सर्व आचार्य तथा सर्व उपाध्याय न कहकर सर्व पद केवल साधुके साथ
ी क्यों लगाया गया है इस शंकाका समाधान वट्टकेरस्वामीविरचित मूलाचारमें यों
केया है—

णिव्वाणसाधए योगे सदा युंजंति साधवः ।
समा सव्वेसु भूदेसु तम्हा ते सव्वसाधवः ॥ १ ॥

क्योंकि मोक्षके साधक योगमें सदा रहते हैं इसलिये साधु कहलाते हैं (कर्मयुक्तं
प्नोतीति साधुः) तथा छोटे बडे शत्रु, मित्र आदि सर्व जीवोंमें समान परिणाम रखते
हैं इसलिये सर्वपदसे विभूषित हैं अर्थात् सर्वसाधु कहलाते हैं (सर्वजीवानां हितं साध्नो-
तीति सर्वसाधुरेवमपि) इसके सिवाय प्रश्नके समाधानमें एक यह भी हेतु है कि साधुओं
के पुलाक, वकुशादि तथा गण, कुल, तपस्वी, आदि अनेक भेद हैं। उन सबको ग्रहण

नं० ४

करनेकेलिये साधुके साथ "सर्व" पद लगाया गया है।

इति देवशास्त्रगुरु पूजा समाप्त।

अथ देवशास्त्रगुरुकी भाषा पूजा।

आडिल्ल छंद।

प्रथमदेव अरहंत सुश्रुतसिद्धांतजू।
गुरु निरग्रंथ महंत मुकतिपुरपंथजू॥
तीन रतन जगमांहिं सो ये भवि ध्याइये।
तिनकी भक्तिप्रसाद परमपद पाइये॥ १॥

दोहा—पूजों पद अरहंतके, पूजों गुरुपद सार।
पूजों देवी सरस्वती, नितप्रति अष्टप्रकार॥ २॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

गीता छंद ।

सुरपति उरगनरनाथ तिनकर, बंदनीक सुपदप्रभा ।
अति शोभनीक सुवरण उज्जल, देख छवि मोहित सभा ॥
वर नीर क्षीरसमुद्रघटभरि, अग्र तसु बहुविधि नचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ १ ॥

दोहा—मालिनवस्तु हर लेत सब, जलस्वभाव मलछीन ।
जासौं पूजौं परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥ १ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जे त्रिजग उदरमझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे ।
तिन अहितहरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे ॥
तसु भ्रमरलोभित घ्राण पावन, सरस चंदन घिसि सचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ २ ॥

दोहा—चंदन शीतलता करै, तपतवस्तु परवीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ २ ॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥
यह भवसमुद्र अपार तारण,—के निमित्त सुविधि ठई ।
अति दृढ परमपावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही ॥
उज्जल अखंडित सालि तंदुल. पुंज धरि त्रयगुण जचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ३ ॥
दोहा—तंदुल सालि सुगंधि अति, परम अखंडित बीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ३ ॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥
जे विनयवंत सुभव्यउरअम्बुजप्रकाशन भान हैं ।
जे एकमुखचारित्र भाषत, त्रिजगमाहिं प्रधान हैं ॥

लहि कुंदकमलादिक पहुप, भव भव कुवेदनसों बचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ४॥

दोहा—विविधभांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ ४॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा॥ ४॥

अति सबल मदकंदर्प जाको, क्षुधा उरग अमान है।
दुस्सह भयानक तासु नाशनको सु गरुडसमान है॥
उत्तम छहों रसयुक्त नित नैवेद्य करि घृतमें पचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ५॥

दोहा—नानाविध संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ ५॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय चरुं निर्वपामीति स्वाहा॥ ५॥

जे त्रिजग उद्यम नाश कीने मोहातिमिर महाबली।
तिहिकर्मघातीज्ञानदीपप्रकाशजोति प्रभावली॥
इह भांति दीप प्रजाल कंचनके सुभाजनमें खचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ६॥
दोहा—स्वपरप्रकाशक ज्योति अति, दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ ६॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा॥ ६॥
जो कर्म—ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै।
वर धूप तासु सुगंधि ताकरि सकलपरिमलता हंसै॥
इह भांति धूप चढाय नित, भवज्वलनमाहिं नहीं पचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ७॥
दोहा—अग्निमाहिं परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ ७॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

लोचन सुरसना घ्रान उर, उत्साहके करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकलफलगुणसार हैं॥
सो फल चढावत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ८ ॥

दोहा—जे प्रधान फल फलविषै, पंचकरण—रसलीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ ८ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा। ॥ ८ ॥

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं।
वर धूप निरमल फल विविध, बहुजनमके पातक हरूं॥
इहभांति अर्घ चढाय नित भवि, करत शिवपंकतिमचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ९ ॥

दोहा—वसुविधि अर्घ संजोयकै, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ १ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

अथ जयमाला।

देवशास्त्रगुरु रतन शुभ, तीनरतनकरतार।
भिन्न भिन्न कहुं आरती, अल्प सुगुणविस्तार ॥ १ ॥

पद्धरी छंद।

चउकर्मकि त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादशदोषराशि।
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर, कहवतके छ्यालिस गुण गंभीर ॥
शुभ समवसरणशोभा अपार, शत इंद्र नमत कर सीस धार।
देवादिदेव अरहंत देव, वंदों मनवचतनकरि सु सेव ॥ २ ॥
जिनकी धुनि है ओंकाररूप, निरअक्षरमय महिमा अनूप।

दश अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात शतक सुचेत ॥ ४ ॥
सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूंथे बारह सु अंग।
रवि शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय ॥
गुरु आचारज उवझाय साध, तन नगन रतनत्रयनिधि अगाध।
संसारदेहवैराग धार, निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥ ६ ॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस, भवतारनतरन जिहाज ईस।
गुरुकी महिमा वरनी न जाय, गुरुनाम जपों मनवचनकाय ॥ ७ ॥
सोरठा—कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति विना सरधा धरै।
"द्यानत" सरधावान, अजर अमरपद भोगवै ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सूचना—आगे जिस भाईको निराकुलता स्थिरता हो, वह नीचे लिखे अनुसार वीस तीर्थंकरोंकी भाषा पूजा करे। यदि स्थिरता नहीं हो, तो इस पूजाके आगे पत्र ७८ में में जो अर्घ लिखा है, उसको पढकर अर्घ चढावै।

बीस तीर्थंकरपूजा भाषा।

दीप अढाई मेरु पन, अब तीर्थंकर बीस।
तिन सबकी पूजा करूं, मनवचतन धरि सीस ॥ १ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकराः! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्।
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकराः! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः।
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकराः! अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्।

इंद्र फनींद्र नरेंद्र वंद्य, पद निर्मल धारी।
शोभनीक संसार, सारगुण हैं अविकारी ॥
क्षीरोदधि सम नीरसों (हों), पूजों तृषा निवार ॥
सीमंधर जिन आदि दे, बीस विदेह मंझार ॥
श्रीजिनराज हो भव, तारणतरण जहाज ॥२॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

(इस पुजामें बीस पुंज करना हो, तो इस प्रकार मंत्र बोलना चाहिये)

ओं ह्रीं सीमन्धर–युग्मधर–बाहु–सुबाहु–संजात–स्वयंप्रभ–ऋषभानन–अनंतवीर्य–सूरप्रभ–विशालकीर्ति–वज्रधर–चंद्रानन–भद्रबाहु–भुजंगम–ईश्वर–नेमिप्रभ–वीरषेण–महाभद्र–देवयशोऽजितवीर्येतिविंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

तीनलोकके जीव, पाप आताप सताये ।
तिनकों साता दाता, शीतल बचन सुहाये ॥
बावन चंदनसों जजूं (हो), भ्रमनतपन निरवार । सीमं॰ ॥२॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

(इसके स्थानमें यदि इच्छा हो, तो बड़ा मंत्र पढे)

यह संसार अपार, महासागर जिनस्वामी ।
तातैं तारे बडी भक्ति–नौका जगनामी ॥
तंदुल अमल सुगंधसों (हो) पूजों तुम गुणसार । सीमं॰ ॥२॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

भविक-सरोज-विकाश, निंद्यतमहर रविसे हो ।
जति श्रावक आचार कथनको, तुम्ही बडे हो ॥
फूलसुवास अनेकसों (हो), पूजों मदन प्रहार । सीमं०॥४॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व ० ॥४॥

कामनाग विषधाम,—नाशको गरुड कहे हो ।
क्षुधा महादवज्वाल, तासुको मेघ लहे हो ।
नेवज बहुघृत मिष्टसों (हो), पूजों भूखविडार । सीमं०॥५॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व० ॥५ ॥

उद्यम होन न देत, सर्व जगमाहिं भर्‍यो है ।
मोह महातमघोर, नाश परकाश कर्‍यो है ॥
पूजों दीपप्रकाशसों (हो) ज्ञानज्योतिकरतार । सीमं० ॥ ६॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्व० ॥ ६ ॥

कर्म आठ सब काठ,—भार विस्तार निहारा।
ध्यान अगनिकर प्रगट, सरव कीनो निरवारा॥
धूप अनूपम खेवतें (हो), दुःख जलैं निरधार। सीमं० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्यावादी दुष्ट, लोभऽहंकार भरे हैं।
सबको छिनमें जीत, जैनके मेर खरे हैं।
फल अति उत्तमसों जजों (हो), वांछितफलदातार। सीमं० ॥८॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल आठों दर्व, अरघ कर प्रीति धरी है।
गणधर इंद्रनिहूतैं, थुति पूरी न करी है।
"द्यानत" सेवक जानके (हो) जगतैं लेहु निकार। सीमं० ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अथ जयमाला आरती ।

सोरठा ।

ज्ञानसुधाकर चंद. भविकखेतहित मेघ हो ।
भ्रमतमभान अमंद. तीर्थंकर बीसों नमों ॥ १ ॥

चौपई ।

सीमंधर सीमंधर स्वामी । जुगमंधर जुगमंधर नामी ।
बाहु बाहु जिन जगजन तारे । करम सुबाहु बाहुबल दारे ॥ १ ॥
जात सुजात केवलज्ञानं । स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं ।
ऋषभानन ऋषि भानन दोषं । अनंतवीरज वीरजकोषं ॥ २ ॥
सौरीप्रभ सौरीगुणमालं । सुगुण विशाल विशाल दयालं ।
वज्रधार भवगिरिवज्जर हैं । चंद्रानन चंद्रानन वर हैं ॥ ३ ॥
भद्रबाहु भद्रानिके करता । श्रीभुजंग भुजंगम हरता ।

ईश्वर सबके ईश्वर छाजैं। नेमिप्रभु जस नेमि विराजैं॥ ४ ॥
वीरसेन वीरं जग जानै। महाभद्र महाभद्र बखानै ।
नमों जसोधर जसधरकारी। नमों अजितवीरज बलधारी ॥ ५ ॥
धनुष पांचसै काय विराजै। आव कोडिपूरव सब छाजे ।
समवसरण शोभित जिनराजा। भवजलतारनतरन जिहाजा ॥ ६ ॥
सम्यक रत्नत्रयनिधिदानी। लोकालोकप्रकाशक ज्ञानी ।
शत इंद्रनिकरि बंदित सोहैं। सुरनर पशु सबके मन मोहैं॥ ७ ॥

दोहा।

तुमको पूजे बंदना, करै धन्य नर सोय ।
'द्यानत' सरधा मन धरै, सो भी धरमी होय ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

अथ विद्यमान वीस तीर्थंकरोंका अर्घ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनराजमहं यजे ॥ १ ॥

ओं ह्रीं सीमंधरयुगमंधरबाहुसुबाहुसंजातस्वयंप्रभऋषभाननअनन्तवीर्यसुरप्रभविशालकीर्ति वज्रधरचन्द्राननभद्रबाहुभुजंगमईश्वरनेमिप्रभवीरसेनमहाभद्रदेवयशअजितवीर्येति विंशति-विद्यमानतीर्थंकरेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

अकृत्रिम चैत्यालयोंके अर्घ।

कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीगतान्।
वंदे[1] भावनव्यंतरद्युतिवरस्वर्गामरावासगान् ॥
सद्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलै—

---

१ यह पाठ आराकी एक प्राचीन पुस्तकसे मिला है जो कि ठीक संगत बैठता है इसके सिवाय हमको एक पुस्तकमे "वंदे भावनव्यंतरद्युतिवरान् काल्पामरान् सर्वगान्" यह पाठ भी मिला है किंतु इस पुस्तककी प्राचीनता या अर्वाचीनताका कुछ ज्ञान नहीं है परंतु यही पाठ शुद्ध है, यह निश्चित है।

द्रव्यैर्नीरमुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणां शांतये ॥ १ ॥

मैं दुष्ट कर्मोंको शांत करनेके लिये भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी तथा कल्पवासी देवोंके भवनवर्ती विमानवर्ती अकृत्रिम चैत्यालयोंको एवं तीनलोकवर्ती कृत्रिम तथा अकृत्रिम मनोहर चैत्यालयोंको नमस्कार करता हूं और जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल, द्वारा सदा पूजन करता हूं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसंबंधिजिनबिम्बेभ्योऽर्घं निर्वपामीति०

मैं कृत्रिम—मनुष्य देवादि द्वारा बने हुए तथा अकृत्रिम नहीं बनाये हुए अनादि कालीन चैत्यालयवर्ती जिनप्रतिमाओंके लिये अर्घ समर्पण करता हूं।

वर्षेषु वर्षांतरपर्वतेषु नंदीश्वरे यानि च मंदरेषु ।
यावंति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वंदे जिनपुंगवानां ॥

जंबूद्वीपवर्ती भरत, हैमवत्, विदेहादिक क्षेत्रोंमें, तथा धातकि खंड और पुष्करार्द्धद्वीपवर्ती क्षेत्रोंमें तथा सर्व कुलाचलोंमें और सुदर्शनादिक पांचों मंदराचलोंमें इनके सिवाय मध्यलोकमें जितने भी जिनेन्द्रदेवके अकृत्रिम चैत्यालय हैं मैं उन सभीको नमस्कार करता हूं।

अवनितलगतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां
वनभवनगतानां दिव्यवैमानिकानां ॥
इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां ।
जिनवरनिलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥ २ ॥

पृथ्वीतलमें (पातालमें) व्यंतर तथा भवनवासीदेवोंके दिव्यविमानोंमें (विमान भवन) जो कृत्रिम तथा अकृत्रिम चैत्यालय हैं और इसलोकमें इंद्रोंसे पूजित मनुष्योंके बनाये हुए जिनेन्द्र चैत्यालयोंका शुद्धभावोंसे स्मरण करता हूं।

विशेष—रत्नप्रभा पृथ्वी एकलाख अस्सी हजार योजन मोटी है उसके तीन भाग पटल हैं। १ खरभाग २ पंकभाग, ३ अब्बहुलभाग। खरभाग सोलह हजार योजन मोटा है। पंकभागकी मोटाई चौरासी हजार योजनकी है तथा अब्बहुल भाग अस्सी हजार योजन मोटा है। उनमेंसे पहले खरभागमें एक हजार योजन नीचे तथा एक हजार योजन ऊपरी भागको छोडकर बीचकी चौदह हजार योजनकी मोटाईमें नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार, और दिक्कुमार ये नौ प्रकारके भवनवासी देव तथा किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, भूत, पिशाच ये सात प्रकारके व्यंतर देव अपने २ भवनोंमें रहते

हैं। दूसरे पंकभागमें असुरकुमार जातिके भवनवासी तथा राक्षस जातिके व्यंतरदेव अपने २ भवनोंमें रहते हैं। तीसरे अब्बहुल भागमें नारकी रहते हैं। इस प्रकार पातालमें व्यंतरोंका तथा भवनवासियोंका निवास है। उनके भवनोंमें ही जिनचैत्यालय हैं॥

जम्बूधातकिपुष्करार्द्धवसुधाक्षेत्रत्रये ये भवा-

श्चंद्राम्भोजशिखंडिकंठकनकप्रावृड्घनाभा जिनाः॥

सम्यग्ज्ञानचारित्रलक्षणधरा दग्धाष्टकर्मेन्धना

भूतानागतवर्तमानसमये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः॥ ४॥

भाषा— जंबूद्वीप, धातकी खंड, तथा पुष्करार्द्ध द्वीपवर्ती भरत क्षेत्रोंमें विदेह क्षेत्रोंमें तथा ऐरावत क्षेत्रोंमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, तथा सम्यक्चारित्रके धारक तथा आठ कर्मरूपी ईंधनको जलानेवाले निर्वाण सागरादिक भूतकालीन, ऋषभादिक वर्तमानकालीन तथा भविष्यत्कालवर्ती महापद्मादिक तीर्थंकरोंके लिये मैं नमस्कार करता हूं। जिनमेंसे किन्हीं तीर्थंकरोंके शरीरका वर्ण चंद्रमाके समान श्वेत है। किन्हींका शरीर रक्त कमलके समान लाल वर्णवाला है। कोई तीर्थंकर मोरके कंठके समान वर्णवाले हैं तथा कुछ तीर्थंकर वर्षाकालीन बादलोंके समान नील कांतिवाले शरीरके धारक हैं।

विशेष—जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र, ऐरावतक्षेत्र तथा देवकुरु और उत्तरकुरुके सिवाय शेष विदेह क्षेत्रमें कर्मभूमि हैं और शेष क्षेत्रोंमें भोगभूमि हैं । जंबूद्वीपके इन क्षेत्रोंकी रचना दूनी २ (संख्यामें) धातकी खंड तथा पुष्करार्द्धमें है । जंबूद्वीपकी भरतादिक तीन कर्मभूमियोंमें तथा धातकीखंडकी छह तथैव पुष्करार्द्धकी छह कर्मभूमियोंमें चौथे कालके होने पर चौवीस तीर्थंकर उत्पन्न होकर धर्मका उद्धार करके मोक्ष जाते हैं (विदेह क्षेत्रमें चौथा काल सदा रहता है तथा भरत, ऐरावतमें छह काल क्रमसे हुआ करते हैं) ॥ ४ ॥

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जंबुवृक्षे,
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकररुचिके कुंडले मानुषांके ।
इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यंतरे स्वर्गलोके,
ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भुवनमहितले यानि चैत्यालयानि ॥५॥

अनेक रत्न, सुवर्ण, वनादिककी शोभासे शोभित सुदर्शनादिक पांच मेरुपर्वतोंपर हैमवतादि क्षेत्रवर्ती कुलपर्वतोंपर, भरत ऐरावतक्षेत्रवर्ती रजताचलोंपर, जंबूवृक्षवर्ती, शाल्मलीवृक्षवर्ती विदेहक्षेत्रस्थ वक्षारपर्वतोंपर, चैत्यवृक्षोंमें, नंदीश्वरद्वीपके रतिकर, अंजन,

रुचिगुल नामक पर्वतोंपर, रुचिकवरद्वीपमें, कुंडलवरद्वीपमें, मानुषोत्तरपर्वतपर, धातकीखंड तथा पुष्करार्द्धद्वीपवर्ती इष्वाकारपर्वतोंपर तथा व्यंतरोंके यहां और स्वर्गोंमें अर्थात् कल्प तथा कल्पातीत स्वर्गवासीदेवोंके विमानोंमें एवं ज्योतिषीदेवोंके विमानोंमें तथा पाताल लोकमें जो जिनालय हैं उनके लिये मैं नमस्कार करता हूं ॥ ५ ॥

द्वौ कुंदेंदुतुषारहारधवलौ द्वाविंद्रनीलप्रभौ ।
द्वौ बंधूकसमप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगुप्रभौ
शेषाः षोडश जन्ममृत्युरहिताः संतप्तहेमप्रभा—
स्ते संज्ञानदिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छंतु नः ॥ ६ ॥

भरतक्षेत्रमें वर्तमानकालके चौवीस तीर्थंकर हैं। उनमेंसे चन्द्रप्रभ तथा पुष्पदंत ये दो तीर्थंकर कुन्दपुष्पके समान अथवा चन्द्रमाके समान या बर्फके तुल्य अथवा हीराके हारके समान श्वेतशरीरवाले हैं और मुनिसुव्रत तथा नेमिनाथ ये जिनवर नीलमणिके समान नीलकांतिवाले हैं और पद्मप्रभ तथा वासुपूज्य इन दो तीर्थंकरोंके शरीरका रंग बंधूकपुष्प (सजनाका फूल) के समान लाल है। एवं सुपार्श्वनाथ तथा पार्श्वनाथ तीर्थंकरोंका शरीर प्रियंगुमणि (पन्ना) के समान हरितवर्ण है इनके सिवाय सोलह

तीर्थंकरोंके शरीरकी कांति तपे हुए सुवर्णके समान है। ऐसे जन्म, मरणके रहित, तथा ज्ञानके सूर्य और देवोंसे वंदित समस्त (चौवीस) तीर्थंकर हमको मुक्ति प्रदान करें।

ओं ह्रीं त्रिलोकसंबंधि-अकृत्रिमचैत्यालयेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं तीनलोकवर्ती अकृत्रिम चैत्यालयोंको अर्घ समर्पण करता हूं।

इच्छामि भंते-चेइयभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेओ।

अहलोय तिरियलोय उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेयाणि ताणि सव्वाणि, तीसुवि लोयसु भवणवासिय-वाणविंतरजोयसियकप्पवासयत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण धुव्वेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ण्हाणेण णिच्चकालं अच्चंति पुज्जंति वंदंति णमस्संति। अहमवि इहसंतो तत्थसंताइ णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं। (इत्याशीर्वादः। परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्)

हे परमात्मन् ! मैं अब चैत्यभक्तिका कायोत्सर्ग करना चाहता हूं। तथा उसकी आलोचना [वर्तमान दोषोंका निराकरण—प्रगट करना] करनेके लिये तत्पर हूं। अधोलोकसंबंधी मध्यलोकसंबंधी तथा ऊर्ध्वलोक संबंधी इसप्रकार त्रिलोकवर्ती कृत्रिम तथा अकृत्रिम जितने जिनालय हैं उनको भवनवासी, वनमें उत्पन्न व्यंतर, ज्योतिषी तथा कल्पवासी देव—इसप्रकार चारों प्रकारके देव अपने अपने परिवारसहित दिव्य (स्वर्गमें होनेवाली—कल्पवृक्षसे प्राप्त) गंधसे, दिव्य पुष्पोंसे, दिव्य धूपसे, पंचप्रकारके दिव्य रत्नोंके चूर्णसे, दिव्य सुगंधवासनाद्वारा तथा दिव्य स्नानसे सर्वदा सेवन करते हैं, पूजते हैं, वंदना करते हैं, तथा नमस्कार करते हैं। मैं भी यहां पर (इस स्थानपर) उनकी नित्य ही अर्चना करता हूं, पूजा करता हूं, वंदना करता हूं तथा नमस्कार करता हूं, मेरे दुःखका क्षय हो, कर्म नष्ट हों, मुझे ज्ञान—अथवा रत्नत्रय मिले, शुभगतिमें मेरा गमन हो, मुझे समाधिमरण [शुद्ध शान्त भावों द्वारा मरण] तथा अरहंतके गुणरूपी संपत्ति मिले। [इसप्रकार आशीर्वाद है। यहां पुष्प क्षेपण करना चाहिये]

अथ पौर्वाह्णिक—माध्याह्निक-आपराह्णिकदेववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं श्रीपंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

सकल कर्मोंका क्षय करनेकेलिये मैं प्रातःकालीन, मध्याह्नकालीन, तथा सायंकालीन देव वंदनामें पूर्व आचार्योंके अनुसार भावपूजा, वंदना तथा स्तवनसे संयुक्त श्रीपंचपरमेष्ठियों-की भक्ति तथा कायोत्सर्ग (परिणामोंकी शुद्धताके लिये शरीरको एक आसन, निश्चलता आदिसे कष्ट देना) करता हूं।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं।

णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।

तावकायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

मैं जितने समय तक पंच नमस्कार मंत्रका जाप्य करता हूं तब तक शरीरसे ममत्व भाव [प्रीति] पापकर्म तथा दुष्ट आचरणका त्याग करता हूं।

विशेष—प्रत्येक जाप्यमंत्रका जाप कमसे कम नौ बार बतलाया है, अधिकसे अधिक १०८ बार कहा है। जाप इतनेमें ही पूर्ण हो जाता है। जाप कमसे कम नौ बार ही क्यों कहा ? और अधिकसे अधिक एकसौ आठ बार ही क्यों कहा ? इसका कारण यह है कि मंत्र जपते समय पुरुषको अपना चित्त एकाग्र रखनेके लिये अपने हृदयमें एक कमलकी कल्पना करना चाहिये उस कमलके बीच कर्णिका और आठ दिशाओंमें

फैली हुई आठ पांखुरी होनी चाहिए। उस जापमंत्रको उस कमलकी कर्णिका तथा पांखुरियोंपर लिखा हुआ कल्पित करना चाहिए। फिर प्रथम उस कमलकी कर्णिका पर उस मंत्रका जाप करके पीछे उन आठ पांखुरियों पर उस मंत्रको जपना चाहिये इस प्रकार मंत्रका जाप कमसे कम नौ बार होगा। शक्त्यनुसार उस कर्णिका तथा कमलपत्रों पर तीन, पांच, सात आदि बार मंत्र जपना चाहिये अधिकसे अधिक बारह बार उस कमल पर उस मंत्रका उच्चारण करना चाहिये। इस प्रकार अधिकसे अधिक एक पूर्णजापमें १०८ बार ही मंत्रका उच्चारण हो सकता है। इसका भी यह कारण है कि आरंभ परिग्रहसे अथवा अन्यप्रकारसे पापकार्य १०८ दरवाजोंके द्वारा होता है उन प्रत्येकके निवारणार्थ जाप भी १०८ ही बार होना चाहिये। वे १०८ द्वार इसप्रकार हैं—संरंभ, समारंभ, आरंभ ये तीन क्रियाएं प्रत्येक योगके द्वारा होती हैं इसकारण मन, वचन, कायरूप तीन योगोंको उनसे गुणा करनेपर नौ भेद होते हैं और ये नव प्रकारकी क्रियायें कृत, कारित, अनुमोदनाके ढंगसे हुआ करती हैं इसलिये प्रत्येक भेदके तीन प्रकार होनेसे सत्तावीस भेद हुए फिर इन भेदोंमेंसे प्रत्येक प्रकारका भेद क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायोंके द्वारा ही होता है इसलिये उन सत्तावीस भेदोंको चारसे गुणा कर देनेपर (२७+४=१०८) १०८ भेद हो जाते हैं।

पंचनमस्कार मंत्रको तीन श्वासोच्छ्वासोंमें उच्चारण करना चाहिये। प्रथम श्वासमें "णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं" ये दो पद तथा द्वितीय श्वासमें "णमो आइरीयाणं णमो उवज्झायाणं" ये दो पद तथा तीसरे श्वासमें "णमो लोए सव्वसाहूणं" इतना उच्चारण करना चाहिये इसप्रकार इसमंत्रका नौ बार उच्चारण करनेमें सत्तावीस श्वासोच्छ्वास लगते हैं। १

इति अकृत्रिमचैत्यालय पूजाका अर्घ समाप्त।

अथ सिद्धपूजा द्रव्याष्टक।

ऊर्ध्वाधो रयुतं सबिंदु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं
वर्गापूरितदिग्गताम्बुजदलं तत्संधितत्त्वान्वितं।
अंतःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकारसंवेष्टितं
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकंठीरवः ॥ १ ॥

आठ पांखुरीवाले कमलकी कर्णिकामें [मध्य भागमें] ॐ कारसे वेष्टित तथा ८

ऊपर और नीचे रेफ (र्) से युक्त और बिंदुसहित हकार [र्हं] है। आठ दिशाओं में फैली हुई वे आठ कमलकी पांखुडियां " अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः, क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, य र ल व, श ष स ह" इन आठ वर्गोंसे पूरित हैं और उस कमलके आठ संधि-स्थानोंमें (पत्रोंके झुकावके स्थानपर.) 'णमो अरहंताणं' है तथा उन कमलपत्रोंके अंतः पट 'ह्रीं' से सहित हैं। ऐसे अक्षरात्मक सिद्धपरमेष्ठीका जो पुरुष ध्यान करता है वह पुरुष मुक्तिसुंदरीका पति तथा कर्मरूपी हाथीको सिंहके समान हो जाता है ॥ १ ॥

विशेष—अरहंत परमेष्ठी परम औदारिक शरीरके धारक होते हैं इसलिये वीतराग रूपमें उनकी प्रतिमाका निर्माण हो जाता है जिसका कि पूजन ध्यान आदि कर सक्ते हैं जो कि अपने अभीष्टको देनेवाला है। किंतु सिद्धपरमेष्ठी निकल परमात्मा हैं उनके शरीर नहीं है इसलिये उनको अशरीरी कहते हैं। अतएव उनकी प्रतिमा नहीं बन सक्ती है जिसका कि पूजन, प्रक्षाल, ध्यान आदि कर सकें. इसीकारण उनका पूजन यंत्र रूपमें किया जाता है अर्थात् उपर्युक्त रीतिसे अष्ट पत्रवाले कमलके रूपमें सिद्धयंत्र बनाकर उसकी पूजा की जाती है।

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् । ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र मम सान्निहितो भव भव वषट् ।

सिद्धचक्रके स्वामिन् भो सिद्धपरमेष्ठी ! यहां आइये !! आइये !!!
हे सिद्धचक्रके स्वामिन् सिद्धपरमेष्ठी ! यहां तिष्ठिये !! तिष्ठिये !!!
भो सिद्धचक्रके स्वामिन् सिद्धपरमेष्ठी ! यहां मेरे समीप हूजिये !! हूजिये !!!

निरस्तकर्मसंबंधं, सूक्ष्मं नित्यं निरामयम् ।
वंदेऽहं परमात्मानममूर्तमनुपद्रवम् ॥ १ ॥

मैं कर्मबंधनसे रहित, अशरीरी होनेके कारण सूक्ष्म, जन्म मरणादि रहित होनेसे नित्य, शारीरिक तथा मानसिक आधि व्याधियोंसे रहित होनेके कारण निरामय— [निरोग] पुद्गलका संबंध न होनेके कारण अमूर्त तथा सांसारिक संबंध न होनेसे उपद्रवरहित सिद्ध परमात्माको नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

(सिद्धयंत्रकी स्थापना)

सिद्धौ निवासमनुगं परमात्मगम्यं हान्यादिभावरहितं भववीतकायं ।
रेवापगावरसरोयमुनोद्भवानां नीरैर्यजे कलशगैर्वरसिद्धचक्रं ॥ १ ॥

लोकके अंत भागमें विराजमान, केवलमात्र, सर्वज्ञ देवकेही गोचर [विषयभूत] शरीर की हानि वृद्धि अथवा आत्माकी हानि वृद्धि आदि विकारोंसे रहित तथा जन्मरहित शरीरवाले अर्थात् जन्म मरणसे रहित अथवा संसारातीत शरीरवाले सिद्धोंके समूहको मैं कलशोंमें भरे हुए रेवानदी, यमुनानदी तथा स्वच्छ सरोवरके जलसे पूजता हूं ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

मैं सिद्धयंत्रके स्वामी सिद्धपरमेष्ठीको अथवा सिद्धसमूहको जन्म मरण नाश करने केलिये जलको समर्पण करता हूं ॥ १ ॥

आनंदकंदजनकं घनकर्ममुक्तं सम्यक्त्वशर्मगरिमं जननार्तिवीतं ।
सौरभ्यवासितभुवं हरिचंदनानां गंधैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रं ॥ २ ॥

आनंदके अंकुरको उत्पन्न करनेवाले, कर्म पटलसे रहित, क्षायिक सम्यक्त्व तथा अनंत सुखधारी होनेसे परम गौरवशाली, जन्मकी पीडासे रहित, निर्मलकीर्तिरूपी सुगंधताके निवासस्थान (ऐसे) सर्वोत्तम सिद्धसमूहको मलयगिरिके चंदनकी मनोहर सुगंधसे पूजता हूं ॥ २ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चंदनं

मैं सिद्धयंत्रके स्वामी सिद्धपरमेष्ठीको संसारका संताप मेटनेके लिये चंदन अर्पण करता हूं ।

सर्वावगाहनगुणं सुसमाधिनिष्ठं, सिद्धं स्वरूपनिपुणं कमलं विशालं ।
सौगंध्यशालिवनशालिवराक्षतानां, पुंजैर्यजे शशिनिभैर्वरसिद्धचक्रं ॥

आयु कर्मके नष्ट हो जानेसे अवगाहन गुणके धारक, आत्मीय अनंत गुणोंमें मग्न, संपूर्ण जगतमें प्रसिद्ध अपने वास्तविक निष्कलंक स्वरूपको प्राप्त परब्रह्म और ज्ञानसे सर्व लोक व्याप्त सिद्ध भगवानको सुगंधित श्रेष्ठ चंद्रमाके समान निर्मल अक्षतोंके पुंजसे मैं पूजता हूं । ओं ह्रीं ....अक्षतान् नि० ॥

नित्यं स्वदेहपरिमाणमनादिसंज्ञं, द्रव्यानपेक्षममृतं मरणाद्यतीतम् ।
मंदारकुंदकमलादिवनस्पतीनां पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ४ ॥

कर्मोंके द्वारा होनेवाली जन्म मरणादि अनेक अनित्य पर्यायोंसे रहित होनेके कारण नित्य, चरम शरीरसे कुछ कम अपने शरीरके परिमाणमें अवस्थित, अनादिकालीन, (सामान्य सिद्धराशिकी अपेक्षा) पुद्गलादिक अन्य द्रव्योंसे निरपेक्ष (अपेक्षा न रखनेवाले) अपनी सिद्ध पर्यायसे अच्युत (अचल न हटनेवाले) अथवा जीवोंको ध्यान करने पर अमृतके समान सुख प्रदान करनेवाले तथा मरण, शोक, रोगादिकसे रहित सिद्धसमूहकी मंदार, कुंद, तथा कमल आदिक वृक्षोंके अत्यंत सुंदर पुष्पोंसे मैं पूजन करता हूं ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

सिद्धचक्रके स्वामी सिद्धपरमेष्ठीको मैं कामदेवको नष्ट करनेके लिये पुष्प समर्पण करता हूं ।

ऊर्ध्वस्वभावगमनं सुमनोऽव्यपेतं, ब्रह्मादिबीजसहितं गगनावभासम् ।
क्षीरान्नसाज्यवटकै रसपूर्णगर्भैर्नित्यं यजे चरुवरैर्वरसिद्धचक्रं ॥५ ॥

कर्म बंधके छूट जानेके कारण स्वभावसे ही उर्ध्वगमन करनेवाले, नोइन्द्रिय मति-ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे होनेवाले द्रव्यमन तथा भाव मनसे रहित और जिसका मूल कारण अरहंत दशा है तथा आकाशके समान जो अमूर्तिक है अथवा निर्मल है या आकाशके समान जिसका ज्ञान व्यापक है उस पापपुण्य सिद्ध चक्रको दूध, अन्न तथा घृतसे बने हुए एवं जिनके भीतर मधुर, खट्टा आदि रस परिपूर्ण है ऐसे नाना व्यंजनोंसे (अनेक प्रकारके पकवानों द्वारा) सर्वदा पूजा करता हूं ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुद्रोगविध्वंसनाय नैवेद्यं नि०

सिद्ध यंत्रके स्वामी सिद्धपरमेष्ठीके लिये क्षुधा (भूख) रूपी रोगको नाश करनेके लिये मैं नैवेद्य (पकवान) समर्पण करता हूं।

आतंकशोकभयरोगमदप्रशांतं, निर्द्वन्द्वभावधरणं महिमानिवेशं।
कर्पूरवर्तिबहुभिः कनकावदातै-,र्दीपैर्यजे रुचिवरैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ६ ॥

संताप अथवा उदासी, शोक, भय, रोग, मानसे रहित, निर्द्वन्द्वताके धारक अर्थात् कलहकारी परिणामोंसे रहित या दुविधासे रहित (निश्चल) तथा सर्वोत्तम महिमा (बड़प्पन) के घर स्वरूप सिद्ध मण्डलको मैं सुवर्णके बने हुए अनेक कपूरकी बत्तिओंसे सहित देदीप्यमान दीपकों द्वारा अर्चन करता हूं ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धचक्रके अधिपति सिद्धपरमात्माको मोहरूपी अंधकारको नष्ट करनेके लिये मैं दीपक अर्पण करता हूं।

पश्यन्समस्तभुवनं युगपन्नितांतं, त्रैकाल्यवस्तुविषये निबिडप्रदीपम्।
सद्द्रव्यगन्धघनसारविमिश्रितानां, धूपैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रम्।७।

केवल ज्ञानद्वारा समस्त संसारको अच्छी तरह एक साथ देखनेवाले तथैव भूत, भविष्यत तथा वर्तमान कालवर्ती पदार्थोंको तथा उनकी पर्यायोंको प्रकाशित करनेमें दैदीप्यमान दीपकके समान सर्वोत्तम सिद्धसंघको मैं कपूरसे सहित चंदन, अगर आदि उत्तम तथा सुगंधित पदार्थोंकी सुगंधित धूपद्वारा पूजता हूं ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं नि०

सिद्धचक्रके अधिपति सिद्धमहाराजको आठ कर्मोंको जलानेके लिये धूप चढाता हूं।

सिद्धासुरादिपतियक्षनरेन्द्रचक्रै, र्ध्येयं शिवं सकलभव्यजनैःसुवन्द्यं।
नारिंगपुगकदलीफलनारिकेलैः सोऽहं यजे वरफलैर्वरसिद्धचक्रं ॥ ८ ॥

सिद्ध (व्यंतर देवविशेष) असुर कुमार आदि देवोंके इन्द्रोंके तथा यक्ष, नरपतियोंके समूह द्वारा ध्यातव्य [ध्यान करने योग्य] कल्याण स्वरूप तथा समस्त भव्य-पुरुषों द्वारा वन्दनीय सिद्धोंके संघकी नारंगी, सुपारी, केला, तथा नारियल आदि उत्तम फलोंके द्वारा पूजन करता हूं ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरिमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं नि०

सिद्धयंत्रके अधिपति श्रीसिद्धभगवानको मोक्षरूपी फल पानेकेलिये फल समर्पण करता हूं।

गंधाढ्यं सुपयो मधुव्रतगणैः संगं वरं चंदनं
पुष्पौघं विमलं सदक्षतचयं रम्यं चरुं दीपकं ।
धूपं गंधयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वांछितं ॥ ९ ॥

सुगंधित निर्मल जल, जिसकी सुगंधिसे भौंरे आगये हैं ऐसा चंदन, उज्ज्वल अक्षत का पुंज, पुष्प, मनोहर नैवेद्य, दीपक, तथा सुगंधित धूप और अनेक उत्तम फलोंको एक साथ [अर्घ] जन्म, राग, द्वेषादि दोषोंसे रहित निर्मल, कर्म बंधनरहित अथवा चक्रवर्ती इन्द्रादि पदसे भी उत्तम, अभीष्ट फल पानेके लिये सिद्धोंके चरणोंमें समर्पण करता हूं ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि० ।

मैं सिद्धयंत्रके स्वामी श्रीसिद्धपरमात्माको अमूल्यपद (मोक्ष) पानेके लिए अर्घ अर्पण करता हूं ।

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं सूक्ष्मस्वभावपरमं यदनंतवीर्यं ॥
कर्मौघकक्षदहनं सुखशस्यबीजं वंदे सदा निरुपमं वरसिद्धचक्रं ॥१०॥

कषायोंके क्षय हो जानेसे जिसका ज्ञानोपयोग निर्मल है, समस्त कर्ममलके नष्ट हो जानेसे जिसका आत्मस्वरूप परम निर्मल है, जो औदारिक कार्माणादि शरीरोंसे रहित होनेके कारण परमसूक्ष्म है, वीर्यघातक अंतराय कर्मके नाश हो जानेसे अनंत बलका धारक है, कर्मसमूहरूपी समूहको जलानेवाला तथा सुखरूपी धान्यको उत्पन्न करनेमें बीजके समान है एसे अनुपमगुणधारी सिद्धोंके समूहको मैं सर्वदा नमस्कार करता हूं ॥ १० ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

सिद्धयंत्रके अधिपति श्रीसिद्धपरमेष्ठीको मोक्षपद पानेकेलिये मैं महार्घ समर्पण करता हूं ॥

त्रैलोक्येश्वरवंदनीयचरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीं
यानाराध्य निरुद्धचंडमनसः संतोपि तीर्थंकराः।
सत्सम्यक्त्वविबोधवीर्यविशदाव्याबाधताद्यैर्गुणै-
र्युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान्॥ ११॥

देवेंद्र, धरणेंद्र, चक्रवर्ती आदिसे जिनके चरण पूजनीय हैं, ऐसे प्रचंड मनको रोकने वाले तीर्थंकर भी जिनको आराधन करके नित्य लक्ष्मीको पा चुके हैं तथा जो क्षायिक, सम्यक्त्व, अनंतज्ञान, अनंतवीर्य, अव्याबाध, आदि अनंतगुणोंसे विभूषित हैं और जिनमें परम विशुद्धताका उदय हो गया है ऐसे सिद्धोंका मैं सर्वदा वारंवार स्तवन करता हूं॥ ११॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये)

जयमाला।

विराग सनातन शांत निरंश, निरामय निर्भय निर्मल हंस।
सुधाम विबोधनिधान विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह॥ १॥

रागरहित हे वीतराग ! हे सनातन ! (बहुत पुरातन) उद्वेग, द्वेष, क्रोधादि रहित होनेसे वास्तविक शांतिको प्राप्त करनेवाले हे शांत, अंशकल्पनासे रहित होनेके कारण हे निरंश ! शारीरिक मानसिक रोगोंसे रहित हे निरामय, मरणादिक भयोंसे रहित होनेके कारण हे निर्भय, हे निर्मल तेजके निवास स्थान, हे निर्मल ज्ञानके धारक, मोहरहित होनेसे निर्मोह (ऐसे) हे परमपवित्र, सिद्धोंके समूह मुझपर प्रसन्न हो ॥ १ ॥

विदूरितसंसृतिभाव निरंग, समामृतपूरित देव विसंग ।
अबंध कषायविहीन विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ २ ॥

हे सांसारिक भावोंके दूर करनेवाले हे अशरीर, हे समतारूपी अमृतसे परिपूर्ण हे देव, हे अंतरंग बहिरंग संग हित विसंग, हे कर्मबंधनसे विनिर्मुक्त, हे कषायरहित हे विमोह, विशुद्ध, सिद्धोंके समूह हमार प्रसन्न हो ॥ २ ॥

निवारितदुष्कृतकर्मविपाश, सदामलकेवलकेलिनिवास ।
भवोदधिपारग शांत विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ३ ॥

हे दुष्कर्मके नाशक, हे कर्म जंजालसे रहित, हे निर्मल केवल ज्ञानके क्रीडास्थल संसारके पारगामी हे परमशांत हे निर्मोह, पवित्र सिद्धोंके समूह हमपर प्रसन्न हो ॥ ३ ॥

अनंतसुखामृतसागरधीर । कलंकरजोमलभूरिसमीर ॥
विखंडितकाम विराम विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ४ ॥

हे अनंत सुखरूपी अमृतके समुद्र ! हे धीर ! कलंकरूपी धूलिको उड़ानेके लिये प्रबलवायु ! हे कामविकारको खंडित करनेवाले ! हे कर्मोंके विरामस्थल ! हे निर्मोह पवित्र सिद्धोंके समूह प्रसन्न हो ॥ ४ ॥

विकारविवर्जित तर्जितशोक । विबोधसुनेत्रविलोकितलोक ॥
विहार विराव विरंग विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ५ ॥

हे कर्मजन्य शुभ, अशुभ विकारोंसे रहित ! हे शोकरहित ! हे केवलज्ञानरूपी नेत्रसे सम्पूर्ण लोकको देखनेवाले ! कर्मादिकद्वारा हरणसे रहित, शब्द रहित तथा रंगसे [दूसरेको रिझाना] रहित ऐसे हे मोहरहित परमविशुद्ध सिद्धोंके समूह हमपर प्रसन्नता लाओ ॥ ५ ॥

रजोमलखेदविमुक्त विगात्र । निरंतर नित्य सुखामृतपात्र ॥
सुदर्शनराजित नाथ विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ६ ॥

दोष, आवरण तथा खेदरहित हे अशरीर ! हे निरंतर (समयके अंतरसे रहित)

हे सुखरूपी अमृतके पात्र हे सम्यदर्शनसे या केवलदर्शनसे शोभायमान ! हे संसारके स्वामी ! हे मोहरहित परमपवित्रतायुक्त सिद्धोंके समूह हम पर प्रसन्नता धारण करो।

नरामरवंदित निर्मलभाव। अनंतमुनीश्वरपूज्य विहाव।
सदोदय विश्व महेश विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ७ ॥

हे मनुष्य देवोंसे पूजनीय ! हे समस्त दोषोंसे मुक्त होनेके कारण निर्मल भाववाले, हे अनंतमुनीश्वरोंसे पूज्य, हे विकाररहित, हे सर्वदा उदयस्वरूप, हे समस्त संसारके महास्वामिन, हे मोहरहित, परमपवित्र सिद्धोंके समूह मुझपर प्रसाद धारण करो ॥

विदंभ वितृष्ण विदोप विनिद्र, परापर शंकर सार वितंद्र।
विकोप विरूप विशंक विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह ॥ ८ ॥

हे कपटरहित, हे तृष्णारहित, हे द्वेषादिकदोषरहित, हे निद्रारहित, हे पर तथा अपर शंकर अर्थात् भूतकालीन सिद्धोंकी अपेक्षा पर तथा आगामी सिद्धोंकी अपेक्षा अपर (शं करोतीति शंकरः अर्थात् महा अशांतिकारक अधर्मका नाशकर धर्मरूपी शांतिको करनेवाले) हे आलस्यरहित, हे कोपरहित, हे रूपरहित, हे शंकारहित, हे मोहरहित विशुद्ध सिद्धोंके समूह हम पर प्रसन्न हो ॥ ८ ॥

जरामरणोज्झित वीतविहार । विचिंतित निर्मल निरहंकार ।
अचिंत्यचरित्र विदर्प विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह ॥

हे वृद्धावस्था तथा मरणादशाको नाशकरनेवाले, हे गमनरहित, हे चिंतारहित, मो अज्ञानादिक आत्मीय मैलसे रहित, हे अहंकार (घमंड) रहित, हे अचिंत्य चारित्र के धारक, हे दर्प-अहंकाररहित, हे मोहरहित परम पवित्र सिद्धोंके संघ मुझ पर प्रसन्नता धारण करो ॥ ९ ॥

विवर्ण विगंध विमान विलोभ । विमाय विकाय विशब्द विशोभ ।
अनाकुल केवल सार्व विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह ॥

हे श्वेत पीत आदिक वर्णरहित, हे गंधरहित, हे छोटे, बडे, हलके, भारी आदि परिमाणसे रहित, हे मानरहित, हे लोभरहित, हे मायारहित, हे अशरीर, हे शब्दरहित, हे कृत्रिम शोभारहित, हे निराकुल, हे केवल (असहाय) हे सपरंत पर वस्तुमें मोहरहित परमपवित्र सिद्धोंके संघ हम पर प्रसन्नता धारण करो ॥ १० ॥

घत्ता ।

असमसमयसारं चारुचैतन्यचिह्नं, परपरणतिमुक्तं पद्मनंदींद्रवंद्यं ॥

निखिलगुणनिकेतं सिद्धचक्रं विशुद्धं स्मरति नमति यो वा स्तौति सोऽ-
भ्येति मुक्तिम् ॥ ११ ॥

असाधारण तथा परमोत्कृष्ट जिसका आत्मा है, निर्मल चेतनता जिसका चिन्ह है, जड़-द्रव्यके परिणमनसे रहित तथा पद्मनंदी देव, [मुनि] द्वारा वंदनीय एवं समस्त गुणोंके घरस्वरूप सिद्ध चक्रको (सिद्धोंके समूहको) जो पुरुष स्मरण करता है नमस्कार करता है तथा उसका स्तवन करता है वह पुरुष मोक्षको पा लेता है ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

मैं सिद्धपरमेष्ठी महाराजकेलिये महार्घ समर्पण करता हूं ॥

अडिल्ल छंद ।

अविनाशी अविकार परमरसधाम हो ।
समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो ॥
शुद्धबोध अविरुद्ध अनादि अनंत हो ।
जगतशिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत हो ॥ १ ॥

आप अविनाशी, अविकार, अनुपमसुखके स्थान, मोक्षस्थानमें रहनेवाले, सर्वज्ञ, तथा स्वाभाविक रमणीय हो और निर्मलज्ञानधारी, आत्मिक गुणोंके अनुकूल तथा अनादि

और अनंत हैं। हे संसारके शिरोमणि सर्वोत्तम सिद्ध भगवन् आपकी सदा जय होवे ॥ १ ॥

ध्यान अगनिकर कर्मकलंक सबै दहे।
नित्य निरंजनदेवसरूपी ह्वै रहे॥
ज्ञायकके आकार ममत्व निवारिकैं।
सो परमातम सिद्ध नमूं शिर नायकैं॥ २॥

जिन्होंने शुक्लध्यानरूपी अग्निसे समस्तकर्मरूपी कलंकको जला दिया है तथा जो नित्य निर्दोष देव स्वरूप हो रहे हैं एवं जो मोहभावको त्याग कर ज्ञानस्वरूप हैं उन सिद्ध परमात्माको शिर झुका कर नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥

दोहा।

अविचल ज्ञान प्रकाशते- गुण अनंतकी खान।
ध्यान धरै सो पाइये- परम सिद्ध भगवान॥

इत्याशीर्वादः। (परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्)

जो निश्चल केवल ज्ञानसे प्रकाशमान है तथा अनंतगुणोंके खानस्वरूप हैं ऐसे पूजनीय सिद्ध भगवानको केवल ध्यान द्वारा ही पुरुष पा सकते हैं ॥ ३ ॥

(आशीर्वाद)

अथ सिद्धपूजाका भावाष्टक।

निजमनोमणिभाजनभारया । शमरसैकसुधारसधारया ।
सकलबोधकलारमणीयकं । सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ १ ॥ जलं ।

मैं अपने मनरूपी रत्नमयी पात्रमें भरी हुई, शांति रसरूपी अमृत रसकी धारा द्वारा केवलज्ञानकी किरणोंसे रमणीय, स्वाभाविक अर्थात् स्वभावसे होनेवाले सिद्ध-परमात्माको पूजता हूं ॥ १ ॥

विशेष—सकल आरंभ तथा परिग्रहको त्यागनेवाले मुनीश्वर तथा आरंभपरिग्रह-त्यागी श्रावक एवं पूजनकी सामग्रीसे रहित पूजन करनेका अभिलाषी पुरुष जब कि सिद्धों की पूजन करते हैं तब वे ऐसे भावाष्टकों द्वारा ही पूजन करते हैं क्योंकि चंदन, अक्षत पुष्प, नैवेद्यादिक द्रव्यें न तो उनके पास ही होते हैं न वे इनकी योजना ही करते हैं। इसका कारण भी यह है कि— मनको वशीभूत करनेके कारण वे बिना जलादिक द्रव्योंके

भी पूज्य पदार्थके साथ अपने भावोंका संबंध कर सक्ते हैं। अत एव उन महापुरुषोंका पूजन केवल भावोंसे होता है इसीलिये ऐसी पूजनको भाव पूजन कहते हैं ॥

सहजकर्मकलंकविनाशनैरमलभावसुभाषितचंदनैः ।
अनुपमानगुणावलिनायकं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ २ ॥ चंदनं ।

अनुपम गुण समूहके स्वामी सिद्धपरमेष्ठीकी मैं अनादि कालसे आत्माके साथ रहने वाले कर्मरूपी कलंकका नाश करनेवाले निर्मल मानसिक भाव तथा भक्तिपूरित सुंदर वचनरूपी चंदनसे पूजन करता हूं ॥ २ ॥

सहजभावसुनिर्मलतंदुलैः सकलदोषविशालविशोधनैः ।
अनुपरोधसुबोधनिधानकं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ ३ ॥ अक्षतं ॥

समस्त महा दोषोंको नष्ट करनेवाले, स्वाभाविक निर्मल परिणामरूपी अक्षतोंसे अरोध [किसीसे न रुकनेवाले] केवलज्ञानके स्वामी सिद्धभगवानकी पूजा करता हूं ॥

समयसारसुपुष्पसुमालया सहजकर्मकरेण विशोधया ।
परमयोगबलेन वशीकृतं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ ४ ॥ पुष्पं ॥

स्वाभाविक क्रियारूपी [शुद्ध चारित्ररूपी] हाथके द्वारा सोधी हुई आत्माके शुद्ध

परिणामरूपी फूलोंसे गुथी हुई पुष्पमाला द्वारा, शुक्लध्यानसे अपने असली स्वभावको पानेवाले सिद्ध परमात्माकी अर्चना करता हूं ॥ ४ ॥

अकृतबोधसुदिव्यनिवेद्यकैर्विहितजातिजरामरणांतकैः ।
निरवधिप्रचुरात्मगुणालयं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ ५ ॥ नैवेद्यं ॥

जन्म, जरा तथा मरणको नष्ट करनेवाले, अकृत्रिम ज्ञानरूपी मनोहर नैवेद्योंसे मैं आत्माके अनंत महागुणोंके धारक सिद्ध महाराजको अर्चन करता हूं ॥ ५ ॥

सहजरत्नरुचिप्रतिदीपकै रुचिविभूतितमःप्रविनाशनैः ।
निरवधि स्वविकाशविकाशनैः सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ ६ ॥ दीपं ।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूपी रत्नत्रयकी कांति चमकानेवाले तथा सम्यक्त्वकी ज्योतिको छिपावनेवाले मोहरूपी अंधकारको नाश करनेवाले तथा अनंत आत्माके विकाशको प्रकाशित करनेवाले भाव दीपकोंसे सिद्धपरमेष्ठीको मैं पूजता हूं ॥६॥

निजगुणाक्षयरूपसुधूपनैः, स्वगुणघातिमलप्रविनाशनैः ।
विशदबोधसुदीर्घसुखात्मकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ ७ ॥ धूपं ।

अपने गुणोंके घातक ज्ञानावरणादिक मैलका नाश करनेवाले, अपने ज्ञान, दर्शन

आदि अविनाशी गुणरूपी धूपके द्वारा निर्मल अनंतज्ञान तथा अनंत सुखके धारक सिद्ध महात्माको मैं पूजन करता हूं ॥ ७ ॥

परमभावफलावलिसंपदा सहजभावकुभावविशोधया ।
निजगुणाऽऽस्फुरणात्मनिरंजनं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥८॥ फलं ।

स्वाभाविक ज्ञान, दर्शन आदि भावोंसे मिथ्याज्ञान, मोह आदि खोटे भावोंको हटानेवाली उत्तम भावोंकी समूहरूपी फल संपदासे मैं अनंत ज्ञानादि आत्मीय गुणोंके कारण कर्मादि मैलसे रहित सिद्ध भगवानकी पूजा करता हूं ॥ ८ ॥

नेत्रोन्मीलिविकाशभावनिवहैरत्यंतबोधाय वै,
वार्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलैः ।
यश्चिंतामणिशुद्धभावपरमज्ञानात्मकैरर्चयेत् ।
सिद्धं स्वादुमबाधबोधमचलं संचर्चयामो वयं ॥ ९ ॥ अर्घ्यं ।

नेत्रोंके खोलनेवाले प्रकाशके समान भावसमूहद्वारा जो पुरुष चिंतामणिके समान शुद्ध भाव और उत्तम ज्ञानस्वरूप जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप फल द्वारा अर्चन करता है उसको वह पूजन अनंत ज्ञानके लिये होता है अतः हम

भी आत्मसुखके अनुभवी, बाधारहित ज्ञानके धारी, निश्चल, सिद्ध परमात्माका पूजन करते हैं ॥ ६ ॥

इति सिद्धपूजन समाप्त ।

सोलहकारणका अर्घ ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदपिसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनहेतुमहं यजे ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

दश लक्षण धर्मका अर्घ ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः । ॥
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनधर्ममहं यजे ॥ २

ओं ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्भूतोत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यदशलाक्षणिकधर्मेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

रत्नत्रयका अर्घ ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।

धवलमंगलगाननवाकुले जिनगृहे जिनरत्नमहं यजे ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधाचारसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशप्रकारसम्यक्चारित्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

अथ पंचपरमेष्ठिजयमाला ।

मणुयणाइंदसुरधरियछत्तत्तया, पंचकल्लाणसुक्खावली पत्तया ।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं, ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ॥ १ ॥

जिनके ऊपर नरेंद्र, तथा सुरेंद्रने तीन छत्रोंको लगाया तथा जिन्होंने गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान, मोक्ष इन पांच कल्याणकोंके सुखोंको पाया और जिनके पास अनंत दर्शन, अनंतज्ञान, शुक्लध्यान तथा अनंतबल विद्यमान है। वे जिनेन्द्र भगवान हमको परम मंगल प्रदान करें ॥ १ ॥

जेहिं झाणग्गिवाणेहिं अइथद्धयं, जम्मजरमरणणयरत्तयं दड्ढयं ।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं, ते महादिंतु सिद्धा वरं णाणयं ॥ २ ॥

जिन्होंने अपने ध्यानरूपी अग्निबाणोंसे अत्यंत कठोर जन्म, जरा तथा मरणरूपी

तीन नगरोंको जला दिया है तथा जिन्होंने अविनाशी मोक्षस्थानको पा लिया है वे सिद्धभगवान हमको केवलज्ञान दें ॥ २ ॥

पंचहाचारपंचग्गिसंसाहया, बारसंगाइ सुयजलहिं अवगाहया।
मोक्खलच्छी महंती महं ते सया, सूरिणो दिंतु मोक्खं गया संगया॥३॥

कर्मोंको जलानेवाली दर्शनाचार, ज्ञानाचार, तपाचार, वीर्याचार, और चारित्राचार इन पंचाचाररूपी अग्निको साधनेवाले तथा द्वादशांगरूपी शास्त्रसागरमें अवगाहन करनेवाले और बाधारहित (दुर्लभ) मोक्षको पानेवाले आचार्य महाराज हमको मोक्षरूपी महालक्ष्मी प्रदान करें ॥ ३ ॥

घोरसंसारभीमाडवीकाणणे, तिक्खवियरालणहपावपंचाणणे।
णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसया, वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया॥४॥

घोर संसाररूपी भयानक वनमें महा विकराल नखोंवाला पापरूपी सिंह रहता है उस वनमें मिथ्यात्व कुकर्मादिक द्वारा सुमार्गको भूलकर इधर उधर भटकते हुए जीवको मोक्षरूप कल्याणकारी सुमार्गको बतलानेवाले उपाध्याय परमेष्ठीको मैं सर्वदा नमस्कार करता हूं ॥ ४ ॥

उग्गतवचरणकरणेहिं झीणं गया, धम्मवरझाणसुक्कझाणं गया ।
णिब्भरं तवसिरीए समालिंगया, साहओ ते महामोक्खपहमग्गया ॥

जिनका शरीर घोर तपश्चरणसे क्षीण हो गया है और जो धर्मध्यान तथा शुक्ल ध्यानमें लीन हो गये हैं तथा तपरूपी लक्ष्मीने जिनका गाढ आलिंगन किया है वे साधु महाराज हमको मोक्षमार्गमें लगावें ॥ ५ ॥

एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए, गुरुयसंसारघणवेल्लि सो छिंदए ।
लहइ सो सिद्धसुक्खाइ वरमाणणं, कुणइ कम्मिंधणं पुंजपज्जालणं ॥६॥

इस स्तोत्रसे जो पुरुष पंचपरमेष्ठियोंकी वंदना करता है वह पुरुष संसारकी बडी लताको [वेलिको] काट डालता है तथा परमोत्तम सिद्धसुखको पालेता है और कर्मरूपी ईंधनको जला डालता है ॥ ६ ॥

अरिहा सिद्धाइरिया, उवज्झाया साहु पंचपरमेट्ठी ।
एयाण णमुक्कारो भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥ ७॥

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ये पांच परमेष्ठी (उत्कृष्टपदमें स्थित) हैं । इन परमेष्ठियोंका नमस्कार मुझे प्रत्येक भवमें कल्याण प्रदान करे ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुपंचपरमेष्ठिभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु इन पांच परमेष्ठियोंके लिये अर्घ समर्पण करता हूं।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

इच्छामि भंते पंचगुरुभत्ति काओसग्गो कओ, तस्सालोचेओ अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आइरियाणं, आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अच्चेमि पूजेमि वंदामि णमस्सामि, दुःक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं। इत्याशीर्वादः। पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

भो भगवन्! पंचपरमेष्ठीकी भक्तिमें होनेवाले दोषोंको हटानेके लिये मैं कायो-

त्सर्ग तथा उनकी आलोचना करना चाहता हूं। चंवर, छत्र, सिंहासन, अशोकवृक्ष, भामंडल, दिव्यध्वनि, दिव्यपुष्पवृष्टि, दुंदुभिबाजेका बजना इन आठ महाप्रातिहार्योंसे विभूषित अरहंतभगवान, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, सम्यक्त्व, अनंतबल, अव्याबाधत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व इन आठ गुणोंसे संयुक्त तथा लोकाकाशके ऊपर तनुवातवलयमें रहनेवाले सिद्धपरमेष्ठीकी आठ प्रवचन मात्रिकासे सहित आचार्य महाराजकी, आचारांग आदि द्वादशांगका उपदेश देनेवाले उपाध्याय मुनीश्वरकी तथा रत्नत्रय तथा अन्य अनेक गुणोंमें लवलीन श्रीसर्वसाधुओंकी मैं सर्वदा अर्चन करता हूं, पूजन करता हूं, वंदना करता हूं तथा उनको नमस्कार करता हूं। मेरे दुःखका क्षय होय, कर्मोंका नाश होवे, मुझे समाधिमरण मिले, रत्नत्रय प्राप्त हो तथा शुभगति मिलै एवं मैं अर्हंतकी गुणरूपी महाविभूतिको पाऊं।

(यह आशीर्वाद है। यहां पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये)

अथ शांतिपाठः।

दोधकवृत्तं।

शांतिजिनं शशिनिर्म्मलवक्त्रं, शीलगुणव्रतसंयमपात्रं।

अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं, नौमि जिनोत्तममंबुजनेत्रं ॥ १ ॥

चंद्रमाके समान जिनका मुख निर्मल है, जिनके नेत्र नील कमलके समान हैं तथा जिनका शरीर एकसौ आठ शुभ लक्षणोंसे सुशोभित है और जो अठारह हजार शील, केवलज्ञान, दर्शन आदि गुणोंके तथा व्रत, संयमके धारक हैं, उन जिनोत्तम (कषाय जीतनेवाले यतीश्वरोंमें प्रधान) श्रीशांतिनाथ भगवानको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

पंचममीप्सितचक्रधराणां, पूजितमिंद्रनरेंद्रगणैश्च ।
शांतिकरं गणशांतिमभीप्सुः. षोडशतीर्थकरं प्रणमामि ॥ २ ॥

जो वर्तमानकालीन बारह चक्रवर्तियोंमें पांचवें चक्रवर्ती हैं, देवेंद्र, नरेंद्र मुनींद्रादि के समूहसे जो पूजित हैं उन परमशांतिके करनेवाले सोलहवें शांतिनाथ तीर्थंकरको मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका इन चारोंको गुणोंकी शांतिकी इच्छासे मैं नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥

दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुंदुभिरासनयोजनघोषौ ।
आतपवारणचामरयुग्मे यस्य विभाति च मंडलतेजः ॥ ३ ॥

अशोकवृक्ष, दिव्यपुष्पोंकी वर्षा, दुंदुभि बाजा, सिंहासन, दिव्यध्वनि, तीन छत्र, चौसठ चंवर, तथा भामंडल इन आठ प्रातिहार्योंसे जो भगवान शोभायमान हैं ॥ ३ ॥

तं जगदर्चितशांतिजिनेंद्रं शांतिकरं शिरसा प्रणमामि ।
सर्वगणाय तु यच्छतु शांतिं मह्यमरं पठते परमां च ॥ ४ ॥

अपूर्व शांतिको करनेवाले उस जगत पूज्य श्रीशांतिनाथ जिनवरको मैं मस्तक नवाकर नमस्कार करता हूं । हे भगवन् ! चारों संघको, हमको तथा आपके स्तवन पूजन आदि पढनेवाले पुरुषको शीघ्र ही परम शांति (मुक्ति) प्रदान कीजिये ॥ ४ ॥

येऽभ्यर्चिता मुकुटकुंडलहाररत्नैः
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः ।
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपा-
स्तीर्थंकराः सततशांतिकरा भवंतु ॥ ५ ॥

इंद्रादिकोंने मुकुट, कुंडल, हार, रत्न आदि दिव्य पदार्थोंसे जिनका पूजन किया है तथा जिनके चरण कमल चारों प्रकारके देवोंसे पूजित हैं एवं दीपकके समान संसारको प्रकाशित करनेवाले जिन जिनेश्वरोंने इक्ष्वाकु, सूर्य, चंद्र, हरि आदि उत्तम वंशोंमें जन्म लिया है वे तीर्थंकर संसारमें सर्वदा शांतिका विस्तार करें ॥ ५ ॥

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतींद्रसामान्यतपोधनानां ।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शांतिं भगवान् जिनेंद्रः ॥ ६ ॥

अपने पूजक पुरुषोंको (पूजा करने वालोंको) धर्मके रक्षकोंको अथवा छोटे २ राजाओंको, यतीश्वरोंको तथा सामान्य संयमी महाशयोंको, देशको, राज्यको तथा नगरको एवं राजाको भी जिनेन्द्र भगवन् ! शांति प्रदान करो ॥ ६ ॥

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः,
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यांतु नाशं ।
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्म भूज्जीवलोके,
जैनेंद्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि ॥ ७ ॥

हे स्वामिन् ! सकल प्रजाको कल्याण मिले तथा प्रजारक्षक राजा धार्मिक तथा बलवान होवे, समय समय पर [योग्य समय पर] मेघवर्षा (बादलोंका बरसना) अच्छी तरह हुआ करे, सभी शारीरिक तथा मानसिक व्याधियां नष्ट हो जावें, इस लोकमें दुर्भिक्ष (समय-पर पानीका न बरसना तथा अधिक बरस जाना) चोरी, मारी [प्लेग, हैजा

आदि बडी बीमारियां) जीवोंके लिये क्षणभर भी न हों तथा प्राणीमात्रके लिये सुखदायक जैनधर्मका सर्वदा विस्तार हो ॥ ७ ॥

प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः ।
कुर्वंतु जगतः शांतिं वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥ ८ ॥

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः ।

जिन्होंने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय तथा अंतराय इन चार घातिया कर्मोंको नष्ट कर दिया है और जो केवलज्ञानसे देदीप्यमान हैं वे ऋषभ, अजित आदि तीर्थंकर इस संसारमें शांति करें ॥ ८ ॥

मैं प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग तथा द्रव्यानुयोग शास्त्रजीको नमस्कार करता हूं ॥

अथेष्टप्रार्थना ।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनं ।

सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे
सम्पद्यंतां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥ ९ ॥

हे प्रभो ! जब तक मुझे मुक्ति न मिले तब तक मुझे भव भवमें [प्रत्येक जन्ममें] शास्त्रोंका पढ़ना, पढ़ाना, मनन करना आदि, जिनेंद्रदेवकी भक्ति, निरंतर सज्जन पुरुषों की संगति तथा उत्तम सच्चरित्र पुरुषोंके गुणोंकी प्रशंसा करना और किसी भी पुरुषके दोष कहनेमें मौन धारण करना, एवं सभी पुरुषोंके लिये प्रिय तथा हितकारी वचन और केवल आत्मस्वरूपमें ही भावना (बार बार चिंतवन) करना प्राप्त होवे ॥ ८ ॥

आर्यावृत्तं ।

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनं ।
तिष्ठतु जिनेंद्र ! तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः ॥ १० ॥

भो जिनवरदेव ! जब तक मुझे कर्मोंसे मुक्ति न मिले तब तक आपके चरणयुगल मेरे हृदयमें विराजो तथा मेरा हृदय भी आपके चरणकमलमें लवलीन रहा आवे ॥१०॥

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाणदेव य मज्झवि दुःक्खक्खयं दिंतु ॥ ११ ॥

हे अनंतज्ञानके धारक भगवन् ! मैंने आपके पूजन स्तवनमें अक्षर, पद, अर्थ तथा मात्रासे हीन (कम) जो कुछ उच्चारण किया हो उसको क्षमा कीजिये और मेरे सांसारिक दुःखका नाश कर दीजिये ॥ ११ ॥

दुःक्खखओ कम्मखओ समाहिमरणं च बोहिलाहो य ।
मम होउ जगतबंधव तव जिणवर चरणसरणेण ॥ १२ ॥

हे संसारके बंधु ! हे जिनेश्वर ! आपके चरणोंकी शरणसे मेरे दुःखका तथा कर्मोंका नाश होवे और मुझे समाधि मरण तथा ज्ञानकी प्राप्ति होवे ॥ १२ ॥

त्रिभुवनगुरो ! जिनेश्वर ! परमानंदैककारण कुरुष्व ।
मयि किंकरेऽत्र करुणां यथा तथा जायते मुक्तिः ॥ १३ ॥

हे तीन लोकके स्वामिन् ! हे जिनराज, हे उत्तम निराकुल सुखके एक असाधारण कारण ! मुझे जिसप्रकार मोक्ष मिल सके इस सेवक पर [मुझपर] वैसीही दया कीजिये ॥ १३ ॥

निर्विण्णोहं नितरामर्हन् ! बहुदुक्खया भवास्थित्या ।
अपुनर्भवाय भवहर ! कुरु करुणामत्र मयि दीने ॥ १४ ॥

भो अर्हन देव ! महादुखकारी इस संसारके निवाससे मैं बहुत ही उदासीन हूं। इस लिये हे संसारके नाशक ! मुझ पर दया करो और मुझे ऐसा कर दो जिससे मैं दूसरा जन्म धारण न करूं ॥ १४ ॥

उद्धर मां पतितमतो विषमाद् भवकूपतः कृपां कृत्वा ।
अर्हन्नलमुद्धरणे त्वमसीति पुनः पुनर्वच्मि ॥ १५ ॥

हे जिनेन्द्र ! डूबते हुए मुझे कृपा करके इस विषम संसारकूपसे निकालिये। मेरा उद्धार करनेमें केवल आप ही समर्थ हैं इसीलिए यह बार बार निवेदन मैं आपसे करता हूं ॥

त्वं कारुणिकः स्वामी त्वमेव शरणं जिनेश ! तेनाहं ।
मोहरिपुदलितमानं फूत्करणं तव पुरः कुर्वे ॥ १६ ॥

हे जिनेश ! आप ही दयालु हो तथा आप ही मेरे स्वामी हो और मेरे आश्रयभूत भी आप ही हो इसलिये मैं आपके सामने मोहरूपी शत्रुसे अपमानित होकर विलाप करता हूं।

ग्रामपतेरपि करुणा, परेण केनाप्युपद्रुते पुंसि ।
जगतां प्रभो ! न किं तव, जिन ! मयि खलु कर्मभिः प्रहते ॥

हे जिनदेव ! किसी दुष्ट मनुष्य द्वारा पीड़ित हुए दुखी पुरुष पर जब कि गांवके स्वामी एक छोटे राजाकी भी दया होती है तब क्या भो संसारके स्वामी ! कर्मोंसे पीडित किये गये मुझपर आपकी दया नहीं होगी ? ॥ १७ ॥

अपहर मम जन्म दयां कृत्वेत्येकवचसि वक्तव्ये ।
तेनातिदग्ध इति मे देव ! बभूव प्रलापित्वं ॥ १८ ॥

हे देव ! यद्यपि "दया करके मेरा संसार नष्ट कर दीजिये" मेरा वक्तव्य [कहना] केवल इसी एक वाक्यमें है तथापि मैं कर्मोंके संतापसे बहुत जला हुआ हूं इस कारण यह सब आपके सामने प्रलाप किया है ।

तव जिनवर ! चरणाब्जयुगं करुणामृतशीतलं यावत् ।
संसारतापतप्तः करोमि हृदि तावदेव सुखी ॥ १९ ॥

हे जिनोत्तम ! संसारके संतापसे तपा हुआ मैं दयारूपी अमृतसे शीतल [ठंडे] आपके चरण कमलोंको जब तक अपने हृदयमें धारण किये रहता हूं तभी तक मैं सुखी रहता हूं ॥ १९ ॥

जगदेकशरण ! भगवन् नौमि श्रीपद्मनंदितगुणौघ ।
किं बहुना ? कुरु करुणामत्र जने शरणमापन्ने ॥ २० ॥

भो संसारके एक असाधारण आश्रय ! जिनके गुण बलभद्र द्वारा बढाये गए हैं ऐसे हे भगवन् ! आपके लिये मैं नमस्कार करता हूं । मैं अपने दुःखोंका बहुत क्या-निवेदन करूं ? शरणमें आये हुए मुझ पर करुणा करो ॥ २० ॥

विशेष—इस श्लोकका दूसरा चरण लिखित पुस्तकमें "नेमिश्रीपद्मनंदितगुणौघः" इसप्रकार है । इसका अर्थ इसप्रकार होगा—जिनके गुण बलभद्रने बढाए हैं ऐसे हे नेमिनाथ मुझ पर दया करो (श्रीपद्मेन नंदितो गुणौघो यस्येति श्रीपद्मनंदितगुणौघः । नेमिश्चासौ श्रीपद्मनंदितगुणौघः इति नेमिश्रीपद्मनंदितगुणौघः (तत्संबोधने) इसके सिवाय नेमिनाथ तीर्थंकरके विशेषणानुसार "श्रीपद्मनंदितगुणौघ" इतने वाक्यको विशेषण कहकर 'नेमि' शब्दको विशेष्य बनाना ही संगत बैठता है क्योंकि बलभद्रने अनेक बार नाना स्थानों पर नेमिनाथ स्वामीके गुणोंका विस्तार किया था । अस्तु । किसी अन्य पुस्तकके प्राप्त न होनेके कारण हम यह निश्चय नहीं कर सके हैं कि—"श्रीपद्मनंदितगुणौघः" इस वाक्यके पहले "नेमि" शब्द है या "नेमे" है अथवा 'नौमि' शब्दका ही प्रयोग है ।

(परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अथ विसर्जनं ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया ।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर ॥

मैं यह पूजन बुद्धिपूर्वक [जान करके] अथवा अबुद्धिपूर्वक [बिना जाने] शास्त्र के अनुसार नहीं कर सका हूं । तो भी हे जिनेश ! आपके प्रसादसे (कृपादृष्टिसे) वह सभी त्रुटि (टूट–भूल) पूर्ण हो जाओ ॥ १ ॥

आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनं ।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥ २ ॥

मैं न तो आह्वान (पूज्य देवको अपने समीप बुलाना) ही जानता हूं- न पूजन करना ही मुझसे आता है तथा विसर्जन [पूजनको समाप्त करना] की विधि भी मुझे मालूम नहीं है । इसलिये हे परमेश्वर ! मेरी यह सभी त्रुटि क्षमा कीजिये ॥ २ ॥

मंत्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैव च ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥ ३ ॥

यद्यपि मेरा यह पूजन मंत्र क्रिया तथा द्रव्यसे हीन है (कमी रखता है) तथापि हे जिनराज ! यह सभी त्रुटि (भूल) क्षमा कीजिये और मेरी वारंवार रक्षा कीजिये ॥ ३॥

आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमं ।

ते मयाभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यांतु यथास्थितिं ॥ ४ ॥

मैंने पहले पूजनके लिये जिन जिन देवोंको बुलाया था उनकी मैंने क्रमानुसार पूजा की है यथाक्रम उनको पूजन द्रव्यका भाग भी प्राप्त हो चुका है अब वे सभी देव कृपा करके अपने अपने स्थानको चले जांय ॥ ४ ॥

इति नित्यपूजाविधानं समाप्तं ।

इसप्रकार संस्कृत नित्यनियम पूजाकी भाषा समाप्त हुई ।

अथ भाषास्तुतिपाठ ।

तुम तरणतारण भवनिवारण, भविकमन आनंदनो ।
श्रीनाभिनंदन जगतवंदन, आदिनाथ निरंजनो ॥ १ ॥
तुम आदिनाथ अनादि सेऊं, सेय पदपूजा करूं ।

कैलासगिरिपर रिषभजिनवर, पदकमल हिरदै धरूँ ॥ २॥
तुम अजितनाथ अजीत जीते, अष्टकर्म महाबली ।
यह विरुद सुनकर सरन आयो, कृपा कीजे नाथजी ॥ ३ ॥
तुम चंद्रवदन सु चंद्रलच्छन, चंद्रपुरी परमेश्वरो ।
महासेननंदन, जगतवंदन, चंद्रनाथ जिनेश्वरो ॥ ४ ॥
तुम शांति पांच कल्याण पूजों, शुद्धमनवचकायजू ।
दुर्भिक्ष चोरी पापनाशन, विघन जाय पलायजू ॥ ५ ॥
तुम बालब्रह्म विवेकसागर, भव्यकमलविकाशनो ।
श्रीनेमिनाथ पवित्र दिनकर, पापतिमिर विनाशनो ॥ ६॥
जिन तजी राजुल राजकन्या, कामसैन्या वश करी ।
चारित्ररथ चढि भये दूलह, जाय शिवरमणी वरी ॥ ७ ॥
कंदर्प दर्प सुसर्पलच्छन, कमठ शठ निर्मद कियो ।
विश्वसेननंदन जगतवंदन, सकलसंग मंगल कियो ॥ ८ ॥
जिन धरी बालकपणे दीक्षा, कमठमान विदारकैं ।

श्रीपार्श्वनाथ जिनेंद्रके पद, मैं नमों शिरधारकैं ॥ ९ ॥
तुम कर्मघाता मोखदाता, दीन जानि दया करो।
सिद्धार्थनंदन जगतवंदन महावीर जिनेश्वरो ॥ १० ॥
छत्र तीन सोहैं सुर नृ मोहै, वीनती अवधारिये।
कर जोडि सेवक वीनवे प्रभु, आवागमन निवारिये ॥ ११ ॥
अब होउ भव भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहों।
कर जोड यो वरदान मांगों, मोक्षफल जावत लहों ॥ १२ ॥
जो एकमाहीं एक राजै, एकमाहिं अनेकनो।
इक अनेककी नहीं संख्या, नमों सिद्ध निरंजनो ॥ १३ ॥
चौपाई—मैं तुम चरणकमलगुणगाय। बहुविध भक्ति करी मन लाय ॥
जनम जनम प्रभु पाऊं तोहि। यह सेवाफल दीजे मोहि ॥ १४ ॥
कृपा तिहारी ऐसी होय। जामन मरन मिटावो मोय।
बारबार मैं विनती करूं। तुम सेयें भवसागर तरूं ॥ १५ ॥
नाम लेत सब दुख मिटजाय। तुम दर्शन देख्या प्रभु आय।

तुम हो प्रभु देवनके देव। मैं तो करूं चरण तव सेव ॥ १६ ॥
मैं आयो पूजनके काज। मेरो जन्म सफल भयो आज।
पूजा करके नवाऊं शीश, मुझअपराध क्षमहु जगदीश ॥ १७॥

दोहा—सुख देना दुख मेटना, यही तुम्हारी बान।
मो गरीवकी वीनती, सुन लीज्यो भगवान ॥ १८ ॥
दर्शन करते देवका, आदि मध्य अवसान।
स्वर्गनके सुख भोगकर, पावै मोक्ष निदान ॥ १९ ॥
जैसी महिमा तुमविषे, और धरै नहिं कोय।
जो सूरजमें ज्योति है, तारनमें नहिं सोय ॥ २० ॥
नाथ तिहारे नामतैं, अघ छिनमाहिं पलाय।
ज्यों दिनकर परकाशतैं, अंधकार विनशाय ॥ २१ ॥
बहुत प्रशंसा क्या करूं, मैं प्रभु बहुत अजान।
पूजाविधि जानूं नहिं, सरन राखि भगवान ॥ २२ ॥

इति भाषास्तुतिपाठ समाप्त।